

कल्याण
वर्ष २४
अङ्क १०

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन जय सियाराम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

# विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक २००७, अक्टूबर १९५०



## चित्र-सूची






वार्षिक मूल्य भारतमें ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिङ्ग)

साधारण प्रति भारतमें ।≡) विदेशमें ॥–) ( १० पेंस )


जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥


सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

# 'कल्याण'का
पचीसवें वर्षका विशेषाङ्क

# संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क

## प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंसे प्रार्थना

'कल्याण' अपने ग्राहकोंकी रुचि और आग्रहसे प्रति तीसरे वर्ष प्राचीन साहित्यमें किसी विषय-पर विशेषाङ्क देनेका प्रयत्न किया करता है। इसीलिये 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क'से पहले 'उपनिषदङ्क' निकला था। और अगले वर्ष 'संक्षिप्त स्कन्दपुराण' विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित करना निश्चय किया गया है। भारतीय वाङ्मयमें पुराण-साहित्यका विशेष महत्त्व है। पुराणोंमें स्कन्दपुराण प्रधान है। इसमें तीर्थ, देवता, पर्व और मासादिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें भगवान्के तत्त्व, स्वरूप, रहस्य, लीला, महत्त्व और चरित्रोंको लेकर बड़ी सुन्दर-सुन्दर कथाएँ दी गयी हैं। परंतु यह पुराण बहुत बड़ा है और मूल संस्कृतमें है, इस कारण सर्वसाधारण इसके लाभसे प्रायः अभीतक वञ्चित ही है। इसीलिये इसके विशेष-विशेष उपयोगी स्थलोंको चुन-चुनकर उनका सरल सुन्दर हिंदी अनुवाद इस अङ्कमें देनेका प्रयत्न किया गया है। अतः इस अङ्कमें बहुत ही रोचक, शिक्षाप्रद तथा लोक-परलोकमें कल्याण करनेवाली अनेकों सुरुचिपूर्ण सुन्दर ऐसी कथाएँ रहेंगी, जिनके पढ़नेमें बालक, वृद्ध, युवा सभी नर-नारियोंका मन लगेगा और उनका उपकार होगा।

साथ ही, इसमें भगवान् विष्णु, भगवान् शङ्कर, भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्ण आदिके तथा भक्तोंके एवं अन्यान्य कथा-प्रसङ्गोंके सैकड़ों सादे, इकरंगे तथा बहुरंगे सुन्दर चित्र दिये जायँगे। जिससे यह अङ्क और भी सुन्दर, सुगम, सुबोध और विशेष आकर्षक तथा संग्रहणीय हो जायगा। इसमें पृष्ठ-संख्या लगभग ८०० होगी। यदि एक अङ्कमें संक्षिप्त स्कन्दपुराणकी पूरी सामग्री नहीं जा सकेगी तो अगले कुछ अङ्कोंमें वही और दी जायगी। उसके बादके अङ्कोंमें सदाकी भाँति पारमार्थिक विविध विषयोंपर अनुभवी तथा विद्वानोंके लेख रहेंगे। वार्षिक मूल्य ७॥) रक्खा गया है। इसमें 'संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क' (विशेषाङ्क) मिलेगा और ग्यारह महीनोंतक प्रतिमास एक-एक साधारण अङ्क मिलता रहेगा।

अबतकके प्रकाशित 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंमें अधिकांश ऐसे हैं, जिनके लिये पहलेसे रुपये भेजकर ग्राहक नहीं बन जानेवालोंको निराश ही रहना पड़ा है। उन विशेषाङ्कोंके लिये अबतक हमारे पास बड़ी आग्रहपूर्ण माँगें आती हैं; परंतु अङ्क न होनेसे हमें सबको निराशापूर्ण उत्तर लिखना पड़ता है। अतएव नये-पुराने जिन सज्जनोंको ग्राहक बनना हो, वे मनीआर्डरसे ७॥) रुपये तुरंत भेजनेकी कृपा करें जिससे उनका विशेषाङ्क सुरक्षित हो जाय। मनीआर्डर-फार्म साथ भेजा जा रहा है।

ग्राहकोंके नाम-पते सब देवनागरी ( हिंदी ) में किये जा रहे हैं। अतएव सब पत्रव्यवहारमें, वी० पी० मँगवाते समय और मनीआर्डरके कूपनमें अपना नाम, पता, मुहल्ला, ग्राम, पोस्ट-आफिस, जिला, प्रान्त सब हिंदीमें साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये। मनीआर्डर-कूपनमें ग्राहक-नम्बर जरूर लिखना चाहिये तथा नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' अवश्य लिखना चाहिये।

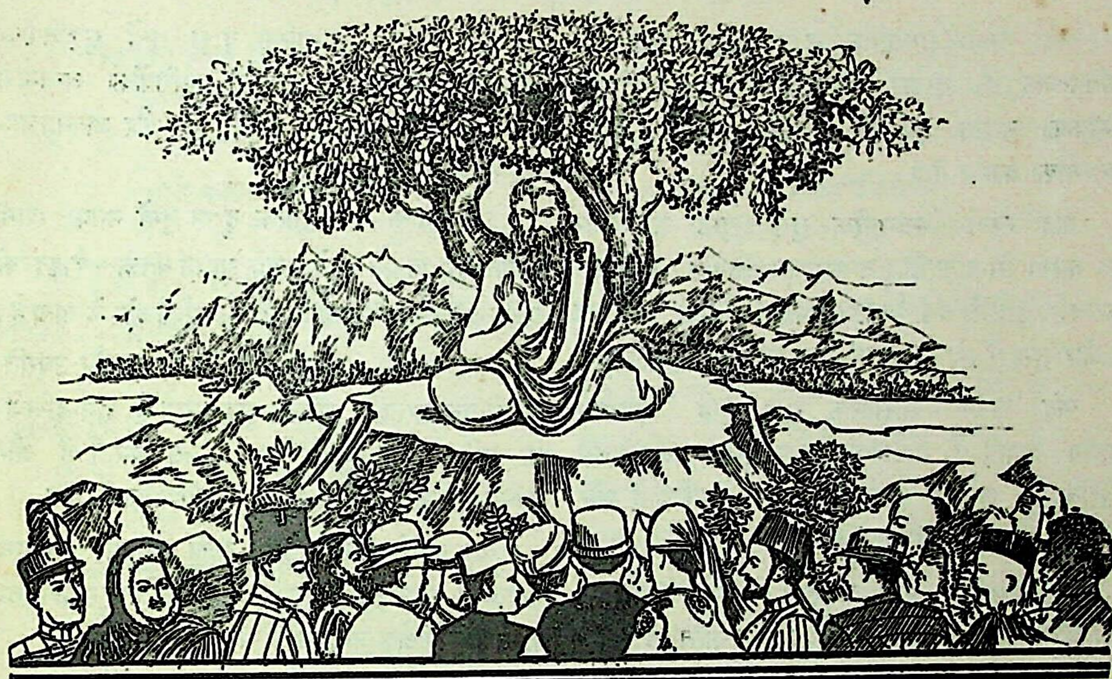
गीताप्रेसके पुस्तक-विभागसे 'कल्याण'के प्रबन्ध-विभागकी व्यवस्था बिल्कुल अलग है। इसलिये ग्राहक महोदयोंको न तो 'कल्याण'के रुपयोंके साथ पुस्तकोंके लिये रुपये भेजने चाहिये और न पुस्तकोंका आर्डर ही भेजना चाहिये। पुस्तकोंके लिये गीताप्रेसके मैनेजरके नाम अलग रुपये भेजने तथा अलग आर्डर लिखना चाहिये, और 'कल्याण'के लिये 'कल्याण' मैनेजरके नाम अलग।

सजिल्द विशेषाङ्क चाहनेवालोंको १।) जिल्द-खर्च अधिक भेजना चाहिये। इस वर्ष जिल्दों-की जुजबन्दीकी सिलाईकी व्यवस्था की गयी है।

## रुपये बीमा अथवा मनीआर्डरसे ही भेजिये।

'कल्याण' तथा 'गीताप्रेस'को जो सज्जन रुपये भेजना चाहें, वे पूरी बीमा बँचकर अथवा मनीआर्डरसे भेजें। सादे लिफाफेमें या रजिस्टर्डपत्रसे रुपये न भेजें। ऐसे भेजे हुए रुपये रास्तेमें निकल जाते हैं। कोई सज्जन इस प्रकार रुपये भेजेंगे और वे यहाँ न पहुँचेंगे तो उनकी जिम्मेवारी 'कल्याण' और 'गीताप्रेस'की नहीं होगी।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥
( मनुस्मृति २ । २० )

वर्ष २४ } गोरखपुर, सौर कार्तिक २००७, अक्टूबर १९५० { संख्या १० पूर्ण संख्या २८७

## क्षुधा-माधुरी

गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी ।
माखन सहित देहु मेरी मैया, सुपक सुकोमल रोटी ॥
कत हौ आरि करत मेरे मोहन, तुम आँगनमैं लोटी ।
जो चाहौ सो लेहु तुरतहीं, छाँड़ौ यह मति खोटी ॥
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौं, मुख चुपर्‌यौ अरु चोटी ।
सूरदासकौ ठाकुर ठाढ़ो, हाथ लकुटिया छोटी ॥

—सूरदासजी

याद रक्खो—सांसारिक सुख तुम्हारी उन्नतिका प्रतिबन्धक है, तुम्हारे विकासका वैरी है, तुम्हारे विवेकका नाशक है और तुम्हारे नये पापों और बन्धनोंका कारण है।

याद रक्खो—सांसारिक सुख तुम्हें सम्पत्तिपर गर्व करना सिखाता है, तुम्हारी प्रवृत्तियोंको बहिर्मुखी करता है, तुम्हारी यथार्थ दृष्टिपर अज्ञानका पर्दा डाल देता है और तुम्हारे सहज जीवन-प्रवाहका अवरोध करता है।

याद रक्खो—सांसारिक सुख तुम्हें ऐश्वर्यका गुलाम बनाता है, भविष्यकी सुखकल्पनाके भ्रमजालमें फँसाता है, तुम्हारे हृदयको कलुषित करता है और तुम्हें पतनकी ओर ले जाता है।

याद रक्खो—सांसारिक सुख विषयोंमें आसक्ति और कामनाको बढ़ाता है, बुद्धिको भ्रष्ट करता है, दीन और दुखियोंके प्रति उपेक्षाके भाव जाग्रत् करता है और अधिकारकी प्रबल लालसा उत्पन्न करता है।

याद रक्खो—सांसारिक सुख दूसरोंकी उन्नतिमें ईर्ष्या उत्पन्न करता है, मोहमुग्ध कर देता है, दूसरोंको मूर्ख और अपनेको बुद्धिमान् माननेके लिये आग्रह करता है और सहज ही श्रेष्ठ पुरुषोंका भी अपमान करवा देता है।

याद रक्खो—सांसारिक सुख मनुष्यकी दृष्टिको परम साध्यसे हटा देता है, विलास-विभ्रममें जोड़ देता है, आत्मशक्तिको छिपा देता है और मानव-जीवनको विफल कर देता है।

याद रक्खो—सांसारिक सुख तुम्हें धर्मसे हटाता है, ईश्वरसे विमुख करता है, आत्माको अधोगतिमें ले जाता है और नरकोंकी यन्त्रणा भोगनेको बाध्य करता है।

याद रक्खो—इसके विपरीत, सांसारिक दुःख उन्नतिमें सहायक है, विकासकी ओर ले जाता है, विवेकको जाग्रत् करता है और पापोंका प्रायश्चित्त कराकर बन्धनोंको काटता है।

याद रक्खो—सांसारिक दुःख तुम्हें सुकृतियोंपर गर्व करना सिखाता है, तुम्हारी प्रवृत्तियोंको अन्तर्मुखी करता है, यथार्थ दृष्टिको खोलता है और जीवनप्रवाहको सीधा चलने देता है।

याद रक्खो—सांसारिक दुःख तुम्हें मनका स्वामी बनाता है, भविष्यमें सच्चे सुखके साधन बतलाता है, हृदयको पवित्र और उदार बनाता है और उत्कर्षकी ओर ले जाता है।

याद रक्खो—सांसारिक दुःख वैराग्य और उपरतिको उत्पन्न करता है, बुद्धिको शुद्ध करता है, दीन-दुखियोंके प्रति सहानुभूतिके भाव जाग्रत् करता है और अधिकारके केन्द्रसे हटाकर कर्तव्यपरायण बनाता है।

याद रक्खो—सांसारिक दुःख विनयी और नम्र बनाता है, मोह-निद्रासे जगाता है, दूसरोंके प्रति सद्भाव पैदा करता है और श्रेष्ठ जनोंका सम्मान करना सिखाता है।

याद रक्खो—सांसारिक दुःख साध्यका स्मरण कराता है, विलास-भ्रमका भंग कर देता है, आत्मशक्तिको प्रकाशित करता है और मानव-जीवनको सफलताकी ओर ले जाता है।

याद रक्खो—सांसारिक दुःख तुम्हें धर्ममें लगाता है, ईश्वरके आश्रयमें ले जाता है, आत्माका उत्थान करता है और नरक-यन्त्रणासे बचाकर सद्गति प्राप्त कराता है।

याद रक्खो—मोहके कारण ही तुम सांसारिक भोगसुखोंको चाहते हो और सांसारिक दुःखोंको भयानक मानकर उनसे भागना चाहते हो। विश्वास करो, जो सुख भगवान्का विस्मरण कराकर भगवान्की ओर अरुचि उत्पन्न कर दे, उसके समान कोई भी हमारा शत्रु नहीं है। और जो दुःख विषयोंसे हटाकर भगवान्की ओर लगा दे, उसके समान हमारा कोई मित्र नहीं है। इसी प्रकारके सुख-दुःखोंकी यह बात है और इसी दृष्टिसे सांसारिक सुख-दुःखका निरीक्षण और परीक्षण करके उनसे लाभ उठाना चाहिये।

'शिव'

# श्रीमद्भागवतकी कुछ सुधा-सूक्तियाँ

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो
ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ।
न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते
भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥
(५ । १९ । २५)

जो प्राणी इस भारतवर्षमें ज्ञान, क्रिया और द्रव्य-राशिसे सम्पन्न मानव-जन्मको पाकर भी मोक्षके लिये प्रयत्न नहीं करते, वे जंगली जन्तुओंकी भाँति पुनः बन्धनमें ही पड़ते हैं ।

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं
स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ।
तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्
वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥
(५ । १९ । २८)

देवता कहते हैं कि यदि इस देवलोकमें स्वर्गसुख-भोगसे बचा हुआ अब भी हमारा यज्ञ, स्वाध्याय एवं क्रियाजनित शुभ पुण्य शेष हो तो उसके फलरूपमें अजनाभ भारतवर्षके भीतर हमलोगोंका जन्म हो और उस समय हमें अपने पूर्वजन्मकी भी स्मृति बनी रहे । भारतवर्ष वह पुण्यस्थली है, जहाँ साक्षात् श्रीहरि अपना भजन करनेवालोंका कल्याण करते हैं ।

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः ।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥
(६ । १ । १६)

राजन् ! पापी मनुष्य अपने मन-इन्द्रिय और प्राणको श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित करके उनके भक्तजनोंकी सेवासे जितना पवित्र हो सकता है, उतना तपस्या आदिसे नहीं हो सकता ।

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥
(६ । १ । १८)

राजेन्द्र ! जैसे मदिरासे भरे हुए घड़ेको नदियाँ भी नहीं शुद्ध कर सकतीं, उसी प्रकार भगवद्विमुख मनुष्य-को अनेकानेक प्रायश्चित्त व्रत भी पवित्र नहीं बना सकते ।

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥
(६ । १ । १९)

जिन्होंने यहाँ भगवान्‌के गुणोंमें अनुरक्त हुए अपने मनको एक बार भी श्रीकृष्णचरणोंमें लगाया है, उनके द्वारा समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है । वे यमराज तथा उनके पाशधारी किङ्करोंको स्वप्नमें भी नहीं देखते ।

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥
(६ । २ । १०)

समस्त पापियोंके लिये यही सबसे सुन्दर प्रायश्चित्त है कि वह भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करे । इससे भगवद्विषयक बुद्धि होती है ।

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥
(६ । २ । ११)

ब्रह्मवादी महात्माओंद्वारा बताये हुए व्रत आदि प्रायश्चित्तोंसे पापी पुरुष वैसा शुद्ध नहीं होता जैसा कि भगवन्नामसम्बन्धी पदोंके कीर्तनसे होता है । नाम-कीर्तन श्रीहरिके गुणोंकी प्राप्ति करानेवाला होता है ।

नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे-
र्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥
(६ । २ । १२)

पापका प्रायश्चित्त कर लेनेपर भी यदि मन पुनः असत् मार्गपर दौड़ता है तो वह प्रायश्चित्त पापनिवृत्तिका आत्यन्तिक साधन नहीं है। अतः जो लोग कर्ममलका निराकरण करना चाहते हैं, उनके लिये श्रीहरिका गुणानुवाद ही अन्तःकरणको पवित्र बनानेवाला है।

**साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।**
**वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥**
(६।२।१४)

किसीके नामके व्याजसे, परिहासमें या गीतके आलाप आदिके लिये अथवा अवहेलनापूर्वक भी लिया हुआ भगवान्‌का नाम सब पापोंका नाश करनेवाला माना गया है।

**पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।**
**हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥**
(६।२।१५)

गिरकर, लड़खड़ाकर, चोट खाकर, बिच्छू आदिके डंक काटनेपर, ताप सहकर या आघात पाकर विवशतापूर्वक भी जो हरि-नामका उच्चारण करता है, वह पुरुष यमयातनाको नहीं प्राप्त होता।

**अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।**
**सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥**
(६।२।१८)

अनजानमें अथवा जानकर उच्चारण किया हुआ जो श्रीहरिका नाम है, वह मनुष्यकी पापराशिको उसी प्रकार भस्म कर देता है जैसे आग ईंधनको।

**जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं**
**चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।**
**कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि**
**तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥**
(६।३।२९)

यमराज अपने सेवकोंसे कहते हैं—जिनकी जिह्वा भगवान्‌के गुण और नामका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त श्रीहरिके चरणारविन्दोंका निरन्तर चिन्तन नहीं करता तथा जिनका मस्तक एक बार भी श्रीकृष्णके सामने नहीं झुकता, भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये कर्म न करनेवाले उन दुष्ट पुरुषोंको तुम अवश्य ले आओ।

**आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।**
**भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः॥**
(६।७।२९)

आचार्य ब्रह्माका, पिता प्रजापतिका, भ्राता इन्द्रका तथा माता साक्षात् पृथ्वीका स्वरूप है।

**दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयम्।**
**अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः॥**
(६।७।३०)

बहिन दयाकी मूर्ति है, अपना अतिथि साक्षात् धर्मका स्वरूप है, अभ्यागत अग्निका अङ्ग है तथा सम्पूर्ण भूत आत्माके रूप हैं।

**ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसङ्कटम्।**
**यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः॥**
(६।१०।६)

निश्चय ही यह संसार स्वार्थी है, यह दूसरेके संकटको नहीं जानता। यदि जानता तो किसीसे याचना न करता, और जो देनेमें समर्थ है, वह माँगनेपर इनकार नहीं करता।

**अजातपक्षा इव मातरं खगाः**
**स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।**
**प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा**
**मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥**
(६।११।२६)

भक्त वृत्रासुर कहते हैं—प्राणवल्लभ कमलनयन! जिनके पंख अभी नहीं उगे हैं ऐसे पक्षिशावक जैसे चारेके लिये अपनी माताकी बाट जोहते रहते हैं, भूखसे पीड़ित बछड़े जैसे वनमें गयी हुई गौ (मा) के दूधके लिये लालायित रहते हैं तथा विषादमें डूबी हुई प्रियतमा

जैसे परदेश गये हुए पतिसे मिलनेके लिये उत्सुक रहती है, उसी प्रकार मेरा मन भी बड़ी उत्कण्ठासे आपका दर्शन करना चाहता है।

**यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः।**
**संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः॥**
(६।१५।३)

जैसे प्रवाहके वेगसे वालुका बह जाती तथा एकत्र हो जाती है, उसी प्रकार जीव कालके प्रभावसे संयुक्त और वियुक्त होते रहते हैं!

**यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः।**
**पर्यटन्ति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु॥**
(६।१६।६)

जैसे बाजारमें बिकनेके लिये रक्खी गयी सुवर्ण आदि वस्तुएँ इधर-उधर भिन्न-भिन्न मनुष्योंके हाथमें जाती रहती हैं, उसी प्रकार जीव भिन्न-भिन्न योनियोंमें उत्पन्न होता रहता है।

**नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः।**
**कर्तारं मन्यतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च॥**
(६।१७।१९)

सुख-दुःखको देनेवाला न तो अपना आत्मा है और न कोई दूसरा ही है। जो अज्ञानी है वही अपने-को अथवा दूसरेको दुःख-सुखका कारण मानता है।

**पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं**
**गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति।**
**जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने**
**गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति॥**
(७।२।४०)

भाग्य अनुकूल हो तो उससे सुरक्षित होकर रास्ते-में गिरी हुई वस्तु भी ज्यों-की-त्यों पड़ी रहती है, परंतु भाग्यकी मारी हुई होनेपर घरमें तिजोरीके भीतर रक्खी हुई वस्तु भी खो जाती है। दैवकी अनुकूल दृष्टि पड़ने-पर वनमें अनाथ प्राणी भी जीवित रह सकता है; परंतु जो भाग्यका मारा हुआ है, वह घरमें सुरक्षित रहनेपर भी मर जाता है।

**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।**
**अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥**
**इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।**
**क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥**
(७।५।२३-२४)

भक्त प्रह्लाद कहते हैं—भगवान् विष्णुके नामोंका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मसमर्पण—यह नव प्रकारकी भक्ति है। यदि किसी पुरुषने भगवान् विष्णुके प्रति यह नवधा भक्ति सम्पादित कर ली तो मैं इसीको सबसे उत्तम अध्ययन मानता हूँ।

**कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।**
**दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥**
(७।६।१)

बुद्धिमान् पुरुष कुमारावस्थासे ही यहाँ भागवत धर्मोंका आचरण करे। क्योंकि मानवजन्म दुर्लभ है, यदि प्राप्त हो गया तो भी स्थिर रहनेवाला नहीं है; किंतु यदि इसका सदुपयोग हुआ तो यह परम पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।

**हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः।**
**इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत्॥**
(७।७।३२)

सम्पूर्ण भूतोंमें सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं, ऐसा अपने मनमें समझते हुए उन सबको इच्छा-नुसार वस्तुएँ देकर भलीभाँति सम्मानित करना चाहिये।

**मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौज-**
**स्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः।**
**नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो**
**भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय॥**

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥
( ७ । ९ । ९-१० )

मेरा ऐसा विचार है कि धन, उत्तम कुल, रूप, तपस्या, वेदाध्ययन, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पुरुषार्थ, बुद्धि और योग—ये सभी परमपुरुष भगवान्‌को प्रसन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं, परंतु भक्तिके द्वारा भगवान् गजराजपर भी सन्तुष्ट हो गये । उपर्युक्त बारह गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् पद्मनाभके चरणकमलसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल ही श्रेष्ठ है जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण सब कुछ भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दिया है । क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुलको पवित्र करता है; किंतु बड़प्पनका अधिक अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता ।

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥
मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत् ॥
( ७ । १४ । ८-९ )

जितनेसे अपना पेट भर जाय उतने ही धनपर जीवोंका अधिकार है । जो इससे अधिक धनको अपना मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये । हरिन, ऊँट, गदहा, बंदर, चूहा, सर्प, पक्षी तथा मक्खीको भी अपने पुत्रकी ही भाँति देखे । भला इन जीवोंमें और पुत्रोंमें अन्तर ही कितना है ।

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत् सुखम् ।
कुतस्तत् कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥
सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥
( ७ । १५ । १६-१७ )

जो सन्तुष्ट है, निष्काम है तथा अपने-आपमें ही रमण करनेवाला है, उसे जो सुख मिलता है, वैसा सुख कामलालसा तथा धनकी अभिलाषासे चारों दिशाओंमें दौड़नेवाले लोगोंको कैसे प्राप्त हो सकता है ।

असङ्कल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥
( ७ । १५ । २२ )

संकल्पके त्यागद्वारा कामको जीते, कामके त्यागसे क्रोधपर विजय प्राप्त करे, अर्थ—धनसे जो अनर्थ होते हैं, उन्हें दृष्टिमें रखकर लोभका त्याग करे तथा तत्त्वके विचारद्वारा भयको जीते ।

यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं
धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ।
ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रुः
स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ॥
नो चेत् प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता
नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपन्ति ।
ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोऽन्धे
संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ॥
( ७ । १५ । ४५-४६ )

यह मनुष्य-शरीररूपी रथ जबतक अपने वशमें है और इसके इन्द्रिय-मन आदि साधन अच्छी दशामें विद्यमान हैं, तभीतक श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंकी सेवा-पूजासे तेज की हुई ज्ञानकी तीखी तलवार लेकर भगवान्‌के आश्रयसे राग-द्वेषादि शत्रुओंका नाश करके अपने स्वाराज्य-सिंहासनपर विराजमान हो जाय और फिर अत्यन्त शान्तभावसे इस शरीरका भी परित्याग कर दे । नहीं तो, तनिक भी प्रमाद हो जानेपर ये इन्द्रियरूप दुष्ट घोड़े और उनसे मित्रता रखनेवाला बुद्धिरूप सारथि रथके स्वामी जीवको उलटे रास्ते ले जाकर विषयरूपी लुटेरोंके हाथमें डाल देगा । वे डाकू सारथि और घोड़ोंके सहित इस जीवको मृत्युके अत्यन्त भयावने घोर अन्धकारमय संसारके कुएँमें गिरा देंगे ।

**यद् युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभि-**
**र्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत् पृथक्त्वात् ।**
**तैरेव सद् भवति यत् क्रियतेऽपृथक्त्वात्**
**सर्वस्य तद् भवति मूलनिषेचनं यत् ॥**
(८।९।२९)

मनुष्य अपने प्राण, धन, कर्म, मन और वाणी आदिसे शरीर एवं पुत्र आदिके लिये जो कुछ करता है, वह सब व्यर्थ ही होता है, क्योंकि उसके मूलमें भेदबुद्धि बनी रहती है। परंतु उन्हीं प्राण आदि वस्तुओंके द्वारा भगवान्‌के लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब भेदभावरहित होनेके कारण अपने शरीर, पुत्र एवं समस्त संसारके लिये सार्थक होता है। जैसे वृक्षकी जड़में पानी देनेसे उसका तना, टहनियाँ और पत्ते सब सिंच जाते हैं, वैसे ही भगवान्‌के लिये किया हुआ कर्म सबके लिये श्रेयस्कर होता है।

**गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ।**
**यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥**
(८।१६।७)

जिन घरोंमें आये हुए अतिथियोंका जलसे भी सत्कार नहीं किया जाता और वे वैसे ही लौट जाते हैं, वे घर निश्चय ही गीदड़ोंके निवासस्थानके सदृश हैं।

**यदृच्छयोपपन्नेन सन्तुष्टो वर्तते सुखम् ।**
**नासन्तुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥**
**पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसन्तोषोऽर्थकामयोः ।**
**यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥**
(८।१९।२४-२५)

जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाय, उसीसे सन्तुष्ट रहनेवाला पुरुष सुखी होता है। परंतु जिसका मन अपने वशमें नहीं है, वह तीनों लोकोंका राज्य पानेसे भी सन्तुष्ट नहीं होता। अतएव वह सुखसे वञ्चित रहता है। धन और भोगोंसे सन्तोष न होना ही जीवके संसारबन्धनमें पड़नेका कारण है। तथा जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसीमें सन्तोष कर लेना मुक्तिका कारण माना गया है।

**यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।**
**न दुह्यन्ति मनः प्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥**
**न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।**
**हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥**
(९।१९।१३-१४)

इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ आदि अन्न, सुवर्ण, (धन-सम्पत्ति) गौ आदि पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब प्राप्त हो जायँ तो भी भोगासक्तिके मारे हुए पुरुषके मनको संतुष्ट नहीं कर सकतीं। उसके मनमें और अधिक भोगोंकी चाह बढ़ती रहेगी। भोगोंकी कामना उपभोगसे कभी शान्त नहीं होती, अपितु घीसे, प्रज्वलित होनेवाली अग्निकी भाँति अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है।

**निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्**
**भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।**
**क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्**
**पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥**
(१०।१।४)

जिनकी समस्त अभिलाषाएँ निवृत्त हो गयी हैं, वे वीतराग मुनि भी जिसका सदा ही गान करते रहते हैं, जो इस भवरोगको दूर करनेवाली अमोघ ओषधि है, और जो कानों तथा मनको अत्यन्त प्रिय लगता है, भगवान् श्रीकृष्णके उस गुणानुवादसे पशुघाती हत्यारेके सिवा दूसरा कौन पुरुष मुँह मोड़ेगा।



# साध्वी सुशीलाकी शिक्षाप्रद कहानी

( लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

श्रीमद्भगवद्गीतामें मनुष्यको आत्मकल्याणार्थ दैवी सम्पदा धारण करनेके लिये कहा गया है ( गीता १६ । ५ ) । अतः कल्याणकामी मनुष्यको दैवी सम्पदामें बतलाये हुए सद्गुण-सदाचारोंको अमृतके समान समझकर उनका सेवन करना चाहिये । गीतामें सोलहवें अध्यायके आरम्भमें ही तीन श्लोकोंमें भगवान्ने सद्गुण-सदाचारोंके साररूप दैवी सम्पदाके छब्बीस लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

'( १ ) भयका सर्वथा अभाव, ( २ ) अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता, ( ३ ) तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और ( ४ ) सात्त्विक दान, ( ५ ) इन्द्रियोंका दमन, ( ६ ) भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं ( ७ ) शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन, ( ८ ) स्वधर्मपालनके लिये कष्ट-सहन और ( ९ ) इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता, ( १० ) मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, ( ११ ) प्रिय और यथार्थ भाषण, ( १२ ) अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, ( १३ ) कर्मोंमें स्वार्थका और कर्तापनके अभिमानका त्याग, ( १४ ) अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव, ( १५ ) किसीकी भी निन्दादि न करना, ( १६ ) सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, ( १७ ) इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना, ( १८ ) कोमलता, ( १९ ) लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और ( २० ) व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, ( २१ ) तेज, ( २२ ) क्षमा, ( २३ ) धैर्य, ( २४ ) बाहरकी शुद्धि एवं ( २५ ) किसीमें भी शत्रुभावका न होना और ( २६ ) अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब हे अर्जुन ! दैवी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं ।'

प्रत्येक भाई-बहिन इन दैवी सम्पदाके छब्बीस लक्षणोंको अपनेमें भलीभाँति धारण करनेका कुछ तरीका जान सकें, इसके लिये यहाँ एक कहानी लिखी जाती है—

प्रयागमें एक ब्राह्मण रहते थे, उनका नाम था देवदत्त । वे बड़े ही विद्वान्, सरलस्वभाव, सदाचारी और ईश्वरभक्त थे । राज्यके अधिकारियोंमें भी उनका बड़ा सम्मान था । उनकी पत्नीका नाम था गौतमी । वह बड़ी ही सरल, सीधी, भोले स्वभावकी तथा अक्षरज्ञानरहित थी । उसको एकसे सौतककी गिनतीतक नहीं आती थी । उसके तीन पुत्र और एक कन्या थी । बड़े लड़केका नाम सोमदत्त, बिचलेका रामदत्त और सबसे छोटेका मोहनलाल था । तीनों ही सुशिक्षित और सदाचारी थे । लड़कीका नाम था रोहिणी । इन सभीके विवाह हो चुके थे । रोहिणीके पतिका देहान्त छोटी उम्रमें ही हो गया तथा उसके कोई सन्तान नहीं हुई, इसलिये वह नैहरमें ही रहती थी । लड़कोंकी पत्नियोंके नाम क्रमशः रामदेवी, भगवानदेवी और सुशीला थे । इनमेंसे पहली दो स्त्रियाँ तो अनपढ़ और मूर्ख थीं, किंतु सुशीला बड़ी विदुषी थी, वह अपने नामके अनुसार ही बड़ी शीलवती थी । वह अत्यन्त शान्तस्वभाव, सद्गुण-सदाचारसम्पन्न, ईश्वरभक्त और पतिव्रता थी । वह सभी कामोंमें चतुर और सुशिक्षिता थी । वह कटाई-सिलाई करने, कसीदे काढ़ने, कपड़ोंपर बेल-बूटे बनाने, गंजी-मोजे बनाने, सुन्दर लिपि लिखने तथा चित्रकारी आदि शिल्प-विद्यामें भी बड़ी निपुण थी । उसमें त्याग, सेवाभाव, धैर्य और कार्यकुशलता आदि गुण विशेषरूपसे थे । जबसे सुशीला घरमें आयी, तबसे घरमें मानो सुव्यवस्था आ गयी । उसने सभीको निःस्वार्थ सेवासे मुग्ध करके अपने अनुकूल बना लिया । वह सभीके साथ बड़े प्रेमसे यथायोग्य बर्ताव किया करती । बड़ोंका आदर करती, अपनेसे छोटोंपर दया और स्नेह रखती तथा समान वयकी स्त्रियोंसे मैत्री करती थी । घरवाले तो सब उसके काम-काज और शील-स्वभावसे सन्तुष्ट रहते ही थे, मुहल्लेके अन्य स्त्री-पुरुष भी उसके गुणोंसे प्रभावित होकर सदा उसकी प्रशंसा किया करते । सुशीला यद्यपि छोटी उम्रकी और नववधू थी, पर उसके गुणोंकी इतनी ख्याति हो गयी कि दूर-दूरकी स्त्रियाँ उससे सलाह और शिक्षा लेने आया करती थीं ।

पण्डित देवदत्तजी नित्य नियमितरूपसे सन्ध्या-गायत्री,

पूजा-पाठ और जप-ध्यान किया करते । वे उपदेश, व्याख्यान और पण्डिताईसे अपने घरकी जीविका चलाते थे। उनके दोनों बड़े लड़के नगरमें ही व्यापार-कार्य किया करते और जो कुछ उससे प्राप्त होता, पिताजीको सौंप देते थे। छोटा लड़का मोहनलाल कालेजमें पढ़ता था। घरमें जो कुछ भी भोजन-खर्च लगता, उसके लिये पण्डितजी प्रतिमास अपनी पत्नीको कुछ रुपये दे दिया करते, जिनसे वह अपने रसोइये या नौकरके द्वारा बाजारसे आवश्यक सामान मँगवा लिया करती। गौतमीको अत्यन्त भोली समझकर रसोइया और नौकर दोनों ही बेईमानी और चोरी करते थे। वे जिस चीजका जो दाम बतला देते, वह उतना ही उन्हें दे देती। फिर, रुपये-पैसे भी वे ही दोनों गिनते; क्योंकि गौतमीको तो गिनती आती नहीं थी। वे रुपये माँगकर ले जाते और थोड़ी-सी चीज लाकर ही कह देते कि रुपये सब पूरे हो गये। कभी मोटा-मोटी हिसाब बतला देते, कभी नहीं। बतलाते तो भी गौतमी तो कुछ समझती थी नहीं।

बुद्धिमती सुशीलाको उनकी चोरी-चालाकी समझनेमें देर नहीं लगी। उसने सोचा, सासजीका स्वभाव सरल और भोला होनेके कारण ये हमारे घरका धन लूट रहे हैं। इसका कोई उपाय करना चाहिये। आखिर, उसने एक दिन रसोइयासे कहा—'महाराजजी! आप बाजारसे जो गेहूँ, चावल, दाल, साग, घी, तैल और मसाला आदि सामान लाते हैं, उन सबका पूरा हिसाब रखना चाहिये।' रसोइयाने कड़ककर कहा—'वाह! तू बड़ी हिसाब लेनेवाली आयी? हमारे यहाँ तो यों ही सारा काम विश्वासपर चलता है। तेरी सास इतनी बड़ी हो गयी पर बेचारीने कभी कोई हिसाब नहीं माँगा, और तू कलकी आयी हुई हम घरके लोगोंसे हिसाब माँगने लगी। मालूम होता है, अब तू ही घरकी मालिकन हो गयी है?' वधूके प्रति रसोइयाके तिरस्कारसूचक कड़े शब्द बगलके कमरेमें बैठे हुए पण्डित देवदत्तजीके कानोंमें पड़े। उन्होंने स्वाभाविक ही बड़ी धीरजके साथ रसोइयाको सम्बोधन करके कहा—'भैया! बहू तो ठीक ही कहती है, उसकी सीधी बातपर यों कड़कना और डाँटना तो उचित नहीं है। तुम जो हिसाब नहीं देते, यह अच्छी बात थोड़े ही है। रुपयोंका हिसाब तो पाई-पाईका होना चाहिये। जो भी कुछ हो, अब तुम छोटी बहूको सब बतला दिया करो। यह लिखी-पढ़ी है, सब हिसाब लिख लिया करेगी।' उन्होंने फिर बहूसे कहा—'बेटी! तुम्हारी सास तो भोली है, अब तुम्हीं घरका हिसाब रक्खा करो।' सुशीला तो यह चाहती ही थी। वह लेन-देनका पूरा-पूरा हिसाब रखने लगी। रसोइया तथा नौकर दोनोंसे ही जो भी बाजारसे सामान मँगाया जाता, वह उनसे पूछकर सारा हिसाब लिख लिया करती।

उसकी सेवा, स्वभाव और गुणोंके कारण घरभरके सभी स्त्री-पुरुष बड़े मुग्ध थे, किंतु स्वार्थी रसोइया और नौकर उसे अपने पथका रोड़ा समझकर उससे द्वेष करने लगे। वे बात-बातमें उसमें छिद्रान्वेषण किया करते और घरकी अन्य स्त्रियोंके मनोंको भी खराब करते रहते। कभी-कभी तो वे ताना भी मार देते कि 'तुम सभीपर तो यह सुशीला मालिकन है। देखो न! यह आयी तुम्हारे सामने और अब तुमपर हुकुम चलाने लगी है।' परंतु वे कहतीं—'यह बेचारी तो हम सभीके हुकुमके अनुसार चलती है और बहुत ही सुशील है, तुम व्यर्थ ही ऐसा क्यों कहते रहते हो?' पर वे तो उसके पीछे पड़े हुए थे, जब अवसर पाते, उसपर झूठा दोष आरोपकर घरवालोंको लगाया-बुझाया करते। ऐसा होनेपर भी सुशीलाके चित्तपर कभी विक्षेप या अशान्ति देखनेमें नहीं आयी, वह तो हर समय प्रसन्नचित्त रहा करती। किंतु अन्य स्त्रियाँ मूर्ख थीं, अतः बार-बार उनकी बातें सुननेसे उन स्त्रियोंपर उनका असर होने लगा। रसोइया और नौकरोंकी बातोंको सच्ची मानकर वे स्त्रियाँ घरके पुरुषोंको भी सुशीलाके विपरीत अनेक तरहकी बातें कहने लगीं; किंतु सुशीलाके गुणोंसे प्रभावित होनेके कारण पुरुषोंपर उनकी बातोंका कुछ भी असर नहीं हुआ।

कुछ समयके बाद सुशीलाके एक कन्या हुई; उसका नाम रक्खा गया इन्द्रसेनी। इसके दो वर्ष बाद एक लड़का हुआ, जिसका नाम पण्डितजीने इन्द्रसेन रक्खा। लड़केके जन्मके कुछ दिनों बाद सोमदत्त आदिने अनेक बन्धु-बान्धव और मित्रोंको बुलाकर उनकी बाजारू मिठाई, बीड़ी, सिगरेट आदिसे खातिर की और वे सभी चौपड़-ताश खेलने, हँसी-मजाक करने और हो-हल्ला मचाने लगे। घरमें धूम मच गयी। यह सब देखकर सुशीलाने विनयपूर्वक प्रार्थना की—'यह सब किसलिये कराये जाते हैं?' घरवालोंने कहा—'यह तो यहाँकी प्रथा है। लड़केकी रक्षाके लिये उत्सव मनाया जाता है।' बहूने हाथ जोड़कर विनयसे कहा—'इससे तो बुरे संस्कार पड़ते हैं, पैसे भी व्यर्थ खर्च होते हैं और हो-हल्ला होनेसे मुझे नींद भी कम आती है। अतः मुझे तो इसमें सिवा हानिके कोई भी लाभ नहीं दीखता। मेरे नैहरमें तो

बहुत अच्छी प्रथा है। वहाँ तो नामकरण-संस्कार होनेके बाद वेद और गीताका पाठ; कथा-कीर्तन आदि हुआ करते हैं; धर्मात्मा, भक्त, दानी, परोपकारी और शूरवीर पुरुषोंकी कथाएँ सुनायी जाती हैं; जिससे बड़ी ही अच्छी शिक्षा मिलती है। इसलिये मेरी तो आपसे यही प्रार्थना है कि इन प्रमादके कार्योंको बंद करा दिया जाय।' सुशीलाके इन विनययुक्त वचनोंका उनपर अच्छा असर पड़ा। उन्होंने तुरंत वे सब बंद करके सुशीलाके कहे अनुसार सारी व्यवस्था कर दी।

घरमें और कोई लड़का न होनेके कारण गौतमी उस लड़केसे विशेष प्यार किया करती। उसने उसके हाथों और पैरोंमें काले डोरे बाँध दिये और गलेमें एक झाल्रा पहना दिया, जिसमें व्याघ्रनख, लाख और लोहेकी अँगूठी, तावीज तथा जरखनख आदि पिरोये हुए थे। थोड़े समय बाद वे डोरे लड़केके हाथ-पैरोंकी कलाइयोंमें कुछ-कुछ धँसकर इस प्रकार बैठ गये कि उनमें निशान पड़ गये तथा उस झाल्रेसे छाती और पीठपर कई जगह निशान पड़ गये। यह देखकर सुशीलाने साससे कहा—'माताजी! बच्चेके हाथ-पैरोंमें ये डोरे क्यों बाँधे गये हैं! इससे तो इसके हाथ-पैर भी कमजोर रह जायँगे और उनमें निशान भी पड़ गये हैं; तथा यह झाल्रा रातको इसके बदनमें गड़ जाता है, इससे भी कई जगह निशान पड़ गये हैं। इनके बाँधनेसे क्या लाभ है?'

गौतमी बोली—'डाकिनी, पूतना आदिके नजरका दोष बचानेके लिये लड़केकी रक्षाके हेतु ये बाँधे जाते हैं।' तब सुशीलाने पूछा—'आपने इन्द्रसेनीको तो ये कभी नहीं पहनाये?' गौतमीने उत्तर दिया—'लड़कियोंकी रक्षा तो भगवान् करते हैं। इसलिये उनके यह सब बाँधनेकी आवश्यकता नहीं।' सुशीलाने हाथ जोड़कर बड़ी ही विनयसे कहा—'माताजी! भगवान् तो सबकी ही रक्षा करते हैं। जो भगवान् इन्द्रसेनीकी रक्षा करते हैं, वही इसकी भी रक्षा करेंगे। इसके लिये हमलोगोंको इतनी चिन्ता क्यों करनी चाहिये; इन सब कार्योंसे तो उलटा भगवान्पर अविश्वास ही प्रकट होता है तथा कोई लाभ भी नहीं दीखता।'

सुशीलाकी ये युक्तियुक्त बातें गौतमीको भी जँच गयीं और उसने बच्चेके गलेसे वह झाल्रा और हाथ-पैरोंके डोरे उसी दिन निकाल दिये।

( २ )

कुछ दिनोंके पश्चात् हरद्वारमें कुम्भका मेला लगा। सब लड़कोंने मिलकर पण्डितजीके सामने प्रस्ताव रक्खा कि आपकी अनुमति हो तो सब लोग कुम्भ मेलेपर हरद्वार चलें। इसपर पण्डितजीने कहा—'बहुत ही अच्छा है, हम भी चलेंगे।' फिर क्या देर थी, तुरंत तैयारी हो गयी और घरका प्रबन्ध करके वे समस्त परिवारसहित चल पड़े। चलते समय सुशीलाने सबसे प्रार्थना की—'मेलेमें ठग, चोर, कुटनियाँ और लुटेरे भी आया करते हैं, उन सबसे बहुत सावधान रहना चाहिये। किसी भी अपरिचित स्त्री-पुरुषसे कभी सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये, किसीकी दी हुई वस्तु स्वीकार नहीं करनी चाहिये और न किसी अपरिचितका विश्वास ही करना चाहिये। यात्रामें खान-पानमें संयम रखना, और सदा धैर्य तथा विवेकसे काम लेना उचित है। किसीके भी सामने कमजोर और डरपोक नहीं बनना, बल्कि धैर्यपूर्वक उत्साह और साहससे काम निकालना चाहिये।'

रास्तेमें सब लोगोंने अयोध्याजी उतरकर स्नान, दर्शन करनेका विचार किया और वे वहाँ जाकर एक धर्मशालामें ठहर गये। सब लोगोंने सरयूमें स्नान करके मन्दिरोंमें जाकर भगवान्के दर्शन किये और फिर धर्मशालामें आ गये। रसोइया धर्मशालाके बाहर चबूतरेपर बैठा था। वहाँ एक ठगने आकर उससे कहा—'मैं तुम्हें एक मसाला देता हूँ, इसे तुम दालमें डाल दोगे तो दाल बहुत बढ़िया बन जायगी और उसको खानेपर सब घरवाले तुम्हारे वशमें हो जायँगे।' रसोइया तो मूर्ख था ही, उसने उससे वह मसाला ले लिया और कुछ दालमें डाल दिया तथा बाकी बचा हुआ पुड़ियामें बाँधकर अलग रख दिया। भोजन तैयार होनेपर सोमदत्त और रामदत्त दोनों भाई, इन्द्रसेन, इन्द्रसेनी और बहिन रोहिणीने भोजन किया। भोजन करते ही वे सब बेहोश हो गये। यह देखकर सुशीलाने निश्चय किया कि अवश्य ही कुछ-न-कुछ गड़बड़ी है, नहीं तो, ये सभी बेहोश कैसे होते।

वह तत्काल रसोईघरमें गयी और देखा कि एक कागज-की पुड़ियामें धतूरेके बीज रक्खे हैं। उसने रसोइयासे पूछा—'आपने आज यह क्या खिला दिया, जिससे खानेवाले सब बेहोश हो गये?' रसोइयाने कहा—'कुछ नहीं।' सुशीला बोली—'कुछ नहीं तो ये बेहोश कैसे हुए? आप सच्ची बात बतला दीजिये; नहीं तो आपपर कानूनी कार्रवाई की जायगी।' यह कहकर सुशीलाने उसको धतूरेके बीज दिखलाये और कहा—'यह क्यों लाये गये हैं?' रसोइया बोला—'एक सज्जन आये थे, वे मुझको बीस रुपये तो दानस्वरूप

भेंट कर गये और यह मसाला दे गये कि इसे दालमें डाल देनेसे दाल बढ़िया हो जायगी और उसको खाकर सब प्रसन्न हो जायँगे। मैंने मसालेको देखा नहीं; कुछ तो दालमें डाल दिया था और कुछ पुड़ियामें रख दिया।'

सुशीलाने तुरंत सारी बातें अपने पतिसे कहीं और शीघ्र उपचार करनेके लिये निवेदन किया। मोहनलालने पण्डितजीसे कहा। सब सुनकर पण्डितजीको बड़ा खेद और आश्चर्य हुआ। उन्होंने चिकित्साके लिये उसी क्षण अच्छे वैद्योंको बुला भेजा और फिर रसोइयाको बुलाकर उसे डाँटा-धमकाया—'तुमने हम सबको मार डालनेका विचार किया था, तुमको पुलिसमें देना चाहिये।' इसपर उसने उनसे क्षमा-प्रार्थना की, तब पण्डितजीने उसको क्षमा करते हुए कहा—'भविष्यमें किसीके साथ ऐसा काम कभी नहीं करना।' इतनेमें वैद्य आ पहुँचे और तत्काल अनुकूल चिकित्सा हो जानेसे सभी लोग बच गये। सबने सुशीलाकी प्रशंसा की।

दूसरे दिन वे वहाँसे चल पड़े। गाड़ी ज्वालापुर पहुँची। बच्चे प्यासे थे, इसलिये सुशीला उन्हें लेकर पानी पिलाने नीचे उतरी। इतनेमें गाड़ी खुल गयी और वह स्टेशनपर रह गयी। घरके लोगोंने जंजीर खींची; पर वह बिगड़ी होनेसे गाड़ी नहीं रुकी। पण्डित देवदत्तजी एवं अन्य सब लोग हरद्वार पहुँचे। शहरमें सब जगह रुकी हुई थी, इसलिये वे गङ्गाजीके किनारे तंबू डालकर उन्हींमें टिक गये; किंतु बालकोंसहित सुशीलाके छूट जानेसे बड़ी चिन्तामें पड़ गये और उसकी खोज करने लगे।

इधर सुशीला घबरायी नहीं, वह बच्चोंको गोदमें लिये पैदल ही चलकर ज्वालापुरसे हरद्वार आ गयी और एक मन्दिरमें जाकर ठहर गयी। उसने विद्वान् पुजारीजीसे अपना सारा हाल संस्कृतमें ही कह सुनाया। पुजारीजीपर उसकी विद्वत्ताका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने उसको वहाँ ठहरनेके लिये स्थान दे दिया। तब उसने बहुतसे कागज मँगवाकर उनपर अपने ज्वालापुरसे यहाँ आकर मन्दिरमें ठहरनेकी बात लिखी और मन्दिरका पता आदि लिख दिया। पुजारीजीकी सहायतासे परोपकारी स्वयंसेवकोंद्वारा वे विज्ञापन शहरके प्रधान-प्रधान स्थानोंपर चिपकवा दिये गये तथा पुलिसमें सूचना पहुँचा दी गयी। इससे यह समाचार तुरंत ही सब जगह फैल गया। घरवाले खोज कर ही रहे थे। पता लगते ही मन्दिरमें जाकर उसे ले आये। उसकी इस अद्भुत कार्य-कुशलता और धीरजको देखकर घरवालोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

वहाँ मेलेकी भीड़के कारण उन लोगोंको शुद्ध दूध नहीं मिला, और उनको वहाँ कुछ दिन ठहरना था; अतः दो सौ रुपयोंमें एक गाय खरीदी गयी और वे वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। वे रातमें पारी-पारीसे जागकर पहरा दिया करते थे। एक दिनकी बात है, सुशीलाका पहरा था। रातके चार बजे थे। उस समय चोर आया और वह गायको खोलकर ले जाने लगा। सुशीला बड़ी दूरदर्शिका थी। उसने पहलेसे ही तंबूमें एक घण्टा मँगवाकर रख छोड़ा था और घरवालोंको बता रक्खा था कि 'कोई चोर आदि आयेगा या कोई विपत्ति आवेगी तो मैं जोरसे घण्टा बजाऊँगी।' जोरोंसे चिल्लानेपर लज्जा जाती है और सूचना न देनेपर विपत्ति नहीं टलती, चोर धन ले जाता है, इसीलिये सुशीलाने पहलेसे सोचकर यह व्यवस्था की थी। उसने चोरको देख लिया और तुरंत बड़े जोरोंसे घण्टा बजाने लगी। घण्टाकी ध्वनि सुनते ही सब घरवाले चौंक पड़े और सबने एक साथ ही हल्ला किया—'क्या है ! क्या है ?' इतनेमें चोर भाग गया। बहूकी इस बुद्धिमत्तापर सब बड़े प्रसन्न हुए।

जब कुम्भका पर्व आया, तब वे सब हरकी पैड़ीपर स्नान करनेके लिये चले। अत्यधिक भीड़ होनेके कारण कई यात्री रास्तेमें दबकर मर गये; किंतु बुद्धिमती सुशीला घरवालोंको बड़ी चतुराईके साथ भीड़से निकालती हुई सड़कके किनारे किनारे चलकर घाटपर ले गयी। गङ्गास्नान करके सब लोग डेरेपर वापस आ गये। फिर एक-दो दिन बाद ही वे सब लोग प्रयाग लौट आये और अपने घरपर पहलेकी भाँति रहने लगे।

( ३ )

एक बार ग्रीष्मकालकी पूर्णिमाका दिन था, सुशीला अपने घरकी छतपर घूम रही थी। पड़ोसके घरकी मालिकिन भी अपने घरकी छतपर आयी हुई थी। वह सम्पन्न घरकी विधवा ब्राह्मणी थी। उसके दो लड़के थे। एक १६ वर्षका और दूसरा ३ वर्षका। दोनों घरोंकी छतें बराबर होनेके कारण सुशीलाने सामने जाकर उसको नमस्कार किया। वह बड़ी ही कर्कशा थी। वह बोली—'क्यों री ! तू चार अच्छर पढ़ी है, इसीके घमण्डमें मुझे चिढ़ा रही है ?' सुशीला बोली—'नहीं जी, मैं तो आपको अपनी माता और सासके समान समझकर नमस्कार करती हूँ।' वह बोली—'ठीक, तब तो तू मुझे चतुराईसे अपने बाप और ससुरकी औरत बनाना चाहती है ! तेरे उन निपूते बाप और ससुरकी दाढ़ी जलाऊँ, जो मुझे

अपनी औरत बनाना चाहते हैं।' वह इस प्रकार गालियाँ देने लगी और फिर नीचे उतरकर घरके बाहर निकलकर शोर मचाने लगी। जब राह चलते और अड़ोस-पड़ोसके बहुत लोग इकट्ठे हो गये, तब वह उनसे कहने लगी—'इस छोकरी सुशीलाकी ढिठाई तो देखो, यह मुझे अपने बाप और ससुरकी औरत बनाती है।'

जो लोग सुशीलाके हितैषी थे, वे उसकी नाना प्रकारकी गालियोंको सुनकर सुशीलाके पास गये और कहने लगे कि—'तुम अपने पतिको कहकर इसकी पुलिसमें रिपोर्ट करवा दो। अदालत इससे मुचलका ले लेगी। कोई भी किसीको अनुचित गालियाँ नहीं दे सकता।' इसपर सुशीलाने बड़े विनयके साथ हाथ जोड़कर प्रेमसे उन लोगोंको समझाया—'पुलिसमें जाना भले आदमियोंका काम नहीं है। आप देखिये, भगवान्‌ने चाहा तो थोड़े ही समयमें मैं इनको प्रेमसे अपना लेती हूँ।' उसके इस सरल द्रोहरहित हितैषितापूर्ण निर्वैरताके व्यवहारको देखकर वे सब बड़े प्रसन्न होकर चले गये।

एक दिनकी बात है कि उस कर्कशाका तीन सालका बच्चा घरके बाहर सड़कपर खेल रहा था, उसी समय दो साँड़ लड़ते-लड़ते बालकके समीप आ पहुँचे। सुशीलाने यह देख लिया। वह तुरंत दौड़कर उसको अपनी गोदमें उठा लायी और पड़ोसिनके पास जाकर कहा—'अकेले बालकको सड़कपर नहीं छोड़ना चाहिये। दो साँड़ लड़ते आ रहे थे, लड़केको चोट न पहुँचा दें, इसलिये मैं इसे उठा लायी हूँ।' इसपर कर्कशा बोली—'चल री चल। इसे तू क्यों उठा लायी ? मैं आप ही ले आती।' सुशीलाने कहा—'मैं ले आयी तो इसमें मेरा क्या बिगड़ गया ?' यों कहकर लड़केको उसके पास बिठाकर वह अपने घर लौट आयी।

सुशीलाके नैहरमें एक धनी ब्राह्मण था, उसकी सुशीला-पर बड़ी श्रद्धा थी। उसने अपनी बारह वर्षकी कन्याकी सगाईके लिये सुशीलाके पास आदमी भेजा। उस कन्याकी सगाईकी बातचीत इसी कर्कशाके बड़े लड़केके साथ चल रही थी। शहरके एक आदमीने कर्कशासे कहा—'तुम्हारे लड़केकी सगाईके विषयमें पूछ-ताछ करनेके लिये सुशीलाके नैहरका ब्राह्मण उसके पास आया है।' यह सुनकर कर्कशा चौंक उठी और बोली—'वह तो मुझसे लड़ी हुई है और सदा मुझसे दुश्मनी रखती है।' यह कहकर वह सुशीलाके घरके द्वारपर छिपकर खड़ी हो गयी और सुशीला तथा उस ब्राह्मणकी परस्परकी बातचीत गुप्तरूपसे सुनने लगी।

ब्राह्मणने सुशीलासे कहा—'तुम्हारे भाईके मित्रने तुमपर विश्वास करके मुझे यहाँ भेजा है। तुम्हारे पड़ोसमें विधवा ब्राह्मणीके एक सोलह वर्षका लड़का है, उसके साथ उनकी कन्याकी सगाई करनेमें तुम्हारी क्या राय है ?' सुशीला सब हाल जानती थी। उसने सोचा, दोनों ही धनी हैं। दोनोंकी ही स्त्रियाँ कर्कशा और कलहप्रिय हैं। यह सोचकर उसने ब्राह्मणसे कहा—'उनके लिये यह सगाई सब प्रकारसे अच्छी है।' ब्राह्मणने पूछा—'लड़केकी माको तो लोग कर्कशा बतलाते हैं।' सुशीला बोली—'आजकलके समयमें स्त्रियोंमें बुद्धि कम होनेके कारण सभी घरोंमें राग-द्वेष और कलह रहता है, इसीसे एक दूसरेकी निन्दा करनेका स्वभाव पड़ा हुआ है। मेरी समझमें तो उनके लिये यह सगाई कर लेनी अच्छी है।' यह सन्देश लेकर ब्राह्मण वहाँसे चला गया।

कर्कशा सारी बात आद्योपान्त सुन रही थी। उसपर सुशीलाके इस बर्तावका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। वह घरके भीतर सुशीलाके पास चली गयी और विनयसे कहने लगी—'सुशीला ! तू धन्य है। मैंने तो तेरे साथ बुरा-ही-बुरा बर्ताव किया। इसपर भी तू तो मेरा हित ही करती रहती है। बहिन ! मैं तेरे इस व्यवहारको देखकर मुग्ध हो गयी। यह विद्या तूने कहाँसे सीखी है ? क्या मेरा स्वभाव भी तुझ-जैसा हो सकता है ? मैं तेरा सङ्ग करना चाहती हूँ। क्या मैं समय-समयपर तेरे यहाँ आ सकती हूँ ?' सुशीलाने उत्तर दिया—'क्यों नहीं। यह तो आपका ही घर है। आप यहाँ पधारें, यह तो मेरे लिये बड़े ही सौभाग्यकी बात है। आपकी मुझपर बड़ी ही दया और प्रेम है।' वह बड़ी प्रसन्न हुई और समय-समयपर सुशीलाके घर जाने लगी। सुशीलाके सङ्गसे उसपर भी अच्छा असर होने लगा तथा थोड़े ही समय बाद वह भी सुशीलाके समान सुन्दर स्वभाववाली बन गयी।

कर्कशा पड़ोसिनमें ऐसा अद्भुत परिवर्तन देखकर सुशीलाके उन हितैषियोंपर बड़ा अच्छा असर पड़ा, जो पहले उसकी रिपोर्ट पुलिसमें करनेके लिये सुशीलासे अनुरोध करते थे; वे अब सुशीलाके पास आकर कहने लगे—'सुशीला ! बड़े आश्चर्यकी बात है ? तुमने तो इसको अपने समान ही बना लिया !' सुशीला बोली—'यह सब ईश्वरकी कृपा है।'

उन हितैषियोंने फिर कहा—'धन्य है तुमको। हम जो इस कर्कशाकी पुलिसमें रिपोर्ट करनेकी कहते थे, वह हमारी गलती थी।'

कुछ ही दिनों बाद कर्कशाके लड़केका विवाह निश्चित हुआ, तब वह सुशीलाके घरके सभी पुरुषोंको आग्रह करके विवाहमें ले गयी। घरके सभी पुरुष तीन दिनोंके लिये बारातमें चले गये। इसी बीचमें उस मुहल्लेमें एक बनिये-के यहाँ चोरी हो गयी। अतः उस बनियेको साथ लेकर कोतवाल पण्डितजीके घरमें आ घुसे और बोले कि हम आपके घरकी तलाशी लेने आये हैं। यह सुनकर घरकी सब स्त्रियाँ घबरा गयीं; तब गौतमी बोली—'बहू ! पुलिसवाले आये हैं, इनका आना अच्छा नहीं। इन लोगोंको कुछ रुपये-पैसे देकर विदा कर दो।' सुशीलाने कहा—'आप चिन्ता न करें, मैं स्वयं ही सब ठीक कर लूँगी।' फिर सुशीला उस बनियेसे कहने लगी—'क्योंजी ! क्या आप हमारे घरमें पुरुषोंकी अनुपस्थितिमें तलाशी करवाकर हमारी बेइज्जती कराना चाहते हैं ? क्या आपको अपने चोरीके मालका हमारे घरपर सन्देह है ?' बनियेने कहा—'नहीं देवीजी ! मैं तो ऐसा नहीं चाहता। मुझे तो ये पुलिसवाले ही यहाँ ले आये।' फिर सुशीलाने निर्भीकतापूर्वक कोतवालसे कहा—'क्यों कोतवालजी ! क्या आप हमारे घरकी तलाशी लेने आये हैं ?' कोतवाल बोला—'कल रातको इस बनियेके यहाँ चोरी हो गयी; अतः हमलोग तलाशी लेनेके लिये यहाँ आये हैं।' सुशीलाने निर्भयतासे कहा—'बहुत अच्छा ! आप मुझे लिखकर दे दीजिये कि मैं अपनी स्वतन्त्रतासे तुम्हारे घरकी तलाशी ले रहा हूँ और यह भी बताइये कि तलाशी लेनेपर कुछ नहीं पाया जायगा तो हमारी इस बेइज्जतीका दावा हम किसपर करें, उसके जिम्मेवार कौन होंगे ?' यह सुनकर कोतवाल घबराया और बोला—'यह बनिया ही मुझे यहाँ ले आया है और यहाँ आकर अस्वीकार करता है।' यों बात बनाकर वे सब वहाँसे चल दिये। जब घरके पुरुष विवाहसे लौटे तो इस घटनाको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए तथा सुशीलाका और भी अधिक आदर-सत्कार करने लगे।

( ४ )

इस प्रकार घरके पुरुषोंके द्वारा सुशीलाका बड़ा आदर-सत्कार होने लगा। सुशीलाके इस बढ़ते हुए आदर-सम्मानने घरकी अन्य स्त्रियोंके मनोंमें ईर्ष्याकी आग जला दी। वे सब उससे मन-ही-मन कुढ़ने लगीं और उसे नीचा दिखानेके लिये उसमें छिद्रान्वेषण करने लगीं; किंतु सुशीलामें तो कोई दोष था ही नहीं; वह तो सबकी सेवा करती और सबके गुणोंका बखान किया करती, किसीके अवगुणोंकी ओर तो वह कभी देखती ही नहीं। इसलिये उन लोगोंको कोई साधन नहीं सूझता था। घरकी स्त्रियोंकी इस मनोवृत्तिको देखकर रसोइया और नौकरने इस परिस्थितिसे लाभ उठानेकी सोची।

एक दिन घरकी सब स्त्रियोंने रसोइया और नौकरके साथ मिलकर सुशीलाको गिरानेके लिये षड्यन्त्र रचा। एक योजना बनायी गयी और उसीके अनुसार देवी रामदेवीने यह झूठी बात फैलायी कि मेरा स्वर्णका कङ्कण चोरी हो गया और मेरा सन्देह सुशीलापर है। घरके पुरुषों-को इस बातपर विश्वास नहीं हुआ। कुछ ही दिन बीतनेपर बहिन रोहिणीने यह झूठा प्रचार किया कि मेरा लहँगा और एक साड़ी कलसे गायब है। तब पुरुषोंको कुछ आश्चर्य हुआ कि रोज-रोज घरमें यह चोरी कैसे होने लगी। जाँच-पड़ताल की गयी, पर कुछ पता नहीं चला। फिर दो-चार दिनों बाद ही भगवानदेवीने कहा कि मेरा सोनेका हार कल रातसे गायब है। घरवालोंने बहुत छानबीन की; किंतु कुछ भी पता नहीं चला। चलता भी कैसे ? जिसकी चीज होती, वही उसे छिपाकर रख देती। घरकी सभी स्त्रियोंने अपनी-अपनी चीजोंका सुशीलापर ही सन्देह बतलाया।

वहाँ उसी मुहल्लेमें भक्तिदेवी नामकी एक बुढ़िया स्त्री रहती थी, जिसका नैहर सुशीलाके पिताके पड़ोसमें ही था और सुशीलाकी माके साथ उसका बड़ा प्रेम था।

नौकरसे यह सूचना मिली कि भक्तिदेवी कल अपने नैहर जानेवाली है। इसपर नौकर, रसोइया और सब स्त्रियोंने मिलकर एक जालसाजी रची। जिन चार चीजोंके खोनेकी बात फैलायी गयी थी, वे चारों चीजें रोहिणीने एक थैलीमें रखकर उसे सीकर उस बुढ़िया भक्तिदेवीके पास रसोइयाके हाथ भेजी और साथमें एक चिट्ठी लिखकर दी, जिसमें यह लिखा कि 'माताजीसे सुशीलाका नमस्कार। इस भक्तिदेवीके हाथ यह थैली भेजी जा रही है। इसका किसीको पता नहीं लगना चाहिये।' रसोइयाने भक्तिदेवीके पास जाकर कहा—'लो, सुशीलाने अपनी माके पास यह थैली भेजी है और कहा है कि मेरी माको ही देना, किसी दूसरेको नहीं।' यह कहकर रसोइया घर आ गया।

उसी रात्रिमें रोहिणीने सुशीलाको छोड़कर घरकी उन

सभी स्त्रियों और पुरुषोंको एकत्र करके यह बात कही कि कई दिनोंसे जो अपने घरकी चीजें चोरी हो रही हैं, उनके लिये हमलोगोंका सुशीलापर ही सन्देह है । अपने मुहल्लेमें रहनेवाली बुढ़िया भक्तिदेवी सुशीलाकी मासे विशेष प्रेम रखती है । कल वह अपने नैहर जानेवाली है । उसके साथ सुशीलाने अपनी माके पास शायद कुछ भेजा है । कल ही प्रातःकाल भक्तिदेवी जायगी और अपने घरके आगे होकर रास्ता है ही । तब उसे रोककर पूछना चाहिये और सब चीजें देखनी चाहिये कि सुशीलाने क्या-क्या चीजें भेजी हैं ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सुशीलाका पति मोहनलाल अपने घरके द्वारपर बैठ गया और भक्तिदेवीकी प्रतीक्षा करता रहा । जब भक्तिदेवी थैली लिये जा रही थी, तब मोहनलालने उसे रोका और कहा—'बुढ़िया माई ! क्या लिये जा रही हो !' भक्तिदेवीने कहा—'सुशीलाने अपनी माके पास एक चिट्ठी और एक थैली भेजी है ।' मोहनलाल बोला—'उसे नहीं भेजना है, वापस दे दो ।' यह कहकर उसने बुढ़ियासे वह थैली और चिट्ठी ले ली और कहा—'अब तुम जाओ ।'

इसके बाद मोहनलालने, जहाँ घरके सब पुरुष थे, वहाँ वह थैली और चिट्ठी ले जाकर रख दी और बुढ़ियाने जो बात कही, वह सब भी कह दी । थैलीको खोलकर देखा गया तो जो चार चीजें चोरी हो गयी थीं, वे उसके अंदर मिलीं । फिर जब चिट्ठी खोलकर पढ़ी गयी, तब सब आगबबूले हो गये । मोहनलाल क्रोधमें भरकर घरमें गया और सुशीलाको बड़े बुरे शब्दोंमें डाँटने लगा—'बदमाश ! चली जा हमारे घरसे बाहर । तूने ही घरकी सब चीजें चुरायी हैं, तूने जो थैली और चिट्ठी भक्तिदेवीके हाथ अपनी माके पास भेजनेका प्रबन्ध किया था, वह सब पकड़ी गयी । हम किसी हालतमें तुझ-जैसी चोट्टीको घरमें रखना नहीं चाहते । जहाँ तेरी इच्छा हो वहीं चली जा ।' सर्वथा मिथ्या और अप्रत्याशित आरोपको सुनकर सुशीला काँप उठी, उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे; उसने बड़े ही करुण शब्दोंमें कहा—'स्वामिन् ! आप विश्वास करें, मैंने यह काम नहीं किया है । भगवान् साक्षी हैं । आप शान्त होकर सारी बातें सोचिये । जरा उस बुढ़ियासे तो पूछिये कि उसको थैली और चिट्ठी कौन दे गया था । न मैंने कोई चिट्ठी लिखी और न मैंने कोई थैली ही भक्तिदेवीको दी है । आप उस चिट्ठीके अक्षरोंको तो देखिये कि वे किसके हैं । आपको इसकी पूरी-पूरी जाँच-पड़ताल करनी चाहिये ।' पर मोहनलाल तो इस समय क्रोधान्ध था, मेरी पत्नी ऐसा कुकार्य करती है, इससे उसके मनमें बड़ा क्षोभ था । क्रोधमें विवेक नष्ट हो ही जाता है । जाँच पड़ताल कौन करे—प्रमाण सामने हैं । उसने झुँझलाकर कहा—'तुझे सफाई देते शरम नहीं आती । तूने तो मुझपर अमिट कलङ्क लगा दिया । मेरे मुखपर वह कालिख पोत दी, जो कभी धुल नहीं सकती । मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता । जा, तुरंत निकल जा यहाँसे ।' सुशीलाने गिड़गिड़ाकर बहुत कुछ कहा, पर उसने एक भी नहीं सुनी और उसे घरके बाहर निकाल दिया । इन्द्रसेन उस समय चार वर्षका था और इन्द्रसेनी छः वर्षकी, उनको उनकी दादीने अपने पास रख लिया । षड्यन्त्रकारी रसोइया, नौकर और घरकी स्त्रियोंको अपनी सफलतापर बड़ा आनन्द था । वे हँस रहे थे और उछल-उछलकर कह रहे थे 'हम तो पहले ही जानते थे कि यह इतनी बड़ी-बड़ी बातें बनानेवाली निश्चय ही नीच है, पर इसने तो सबपर जादू ही डाल दिया था, आज सारी पोल खुल गयी !'

ऐसा अनुचित व्यवहार देखकर भी सुशीलाके हृदयमें कोई क्रोध[१२] नहीं आया और न कोई [१३]प्रतिहिंसाका भाव ही उत्पन्न हुआ । वह किसीपर भी दोष न लगाकर अपने प्रारब्धको कोसने लगी । उसने सोचा—जब मुझ निरपराधिनीके ऊपर कलङ्क लगाकर मेरे पतिदेव ही मुझे त्याग रहे हैं, तब ऐसी हालतमें मेरे जीनेसे ही क्या प्रयोजन है ? किंतु शास्त्रोंमें बतलाया है कि स्त्रीके लिये पति ही तीर्थ, पति ही व्रत और पति ही सब कुछ है; ऐसा समझकर मुझे उनके विधानमें ही सन्तुष्ट रहना चाहिये और हर समय धैर्य रखना चाहिये । विपत्ति तो सभी मनुष्योंपर आया ही करती है । समझदार मनुष्यको अपने धीरज और धर्मका कभी किसी भी हालतमें त्याग नहीं करना चाहिये । भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

(२ । ५६)

'दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है ।'

श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी ॥

अतः दुःखके आवेशमें आकर जीवनका विनाश करना कोई बुद्धिमानी नहीं है। उससे न इस लोकमें और न परलोकमें ही सुख हो सकता है। बल्कि इस समय जो मुझे घरसे निकाले जानेका दुःख है, आत्महत्या करनेके समय तो इससे भी अधिक दुःख होगा। जो मनुष्य मरनेके लिये नदीमें प्रवेश करता है, उसे उस समय इतना अधिक दुःख होता है कि वह फिर जीनेके लिये बाहर निकलनेका प्रयत्न करता है। इसी प्रकार मरनेके लिये विष खानेवाला भी पुनः जीनेके लिये विष उतारनेका प्रयास करता है और शरीरपर मिट्टीका तेल छिड़ककर मरनेवाला व्यक्ति तो चिल्ला-चिल्लाकर सिसक-सिसककर मरता है। उसे केवल इस लोकमें ही दुःख होता हो—इतना ही नहीं, मरनेके बाद वह अन्धकारमय नरकोंमें जाकर उससे भी घोर कष्ट और दुर्गतिको प्राप्त होता है।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥
(ईशावास्य० ३)

'अज्ञान और दुःख-क्लेशरूप महान् अन्धकारसे आवृत जो असुरोंके प्रसिद्ध नाना प्रकारकी योनियाँ और नरकरूप लोक हैं, आत्माकी हत्या करनेवाले जो कोई भी मनुष्य हों, वे मरकर उन्हीं लोकोंमें बारंबार जाते हैं।'

यही नहीं, उसके नैहर और ससुराल दोनों कुलोंको सदाके लिये घोर कलङ्क लग जाता है। यह मेरे लिये बहुत ही लज्जाकी बात है। उत्तम स्त्रियोंके लिये तो आत्महत्याका संकल्प होना ही कलङ्क है। अतः मैं अपने जीवनको कभी नष्ट नहीं करूँगी। ईश्वरके घरपर न्याय है और मैं सच्ची हूँ। मैं जीती रहूँगी तो एक दिन ऐसा आवेगा कि मेरा यह सब कलङ्क अपने-आप दूर हो जायगा। झूठी बात कहाँतक टिकेगी? मेरी तो बात ही क्या है, भगवान् श्रीकृष्णपर भी मणिकी चोरीका झूठा कलङ्क लग गया था, किंतु वह कायम नहीं रहा। ऐसा विचारकर उसने अपने हृदयमें धीरज धारण किया और वह स्वतः प्राप्त हुए कष्टको सहन करके स्वधर्मपालनरूप तपस्यामें संलग्न हो गयी एवं अपने शरीर-निर्वाहका न्याययुक्त उपाय सोचने लगी।

( ५ )

सायङ्काल होनेपर वह एक धर्मशालामें जाकर ठहर गयी। वह नित्य-निरन्तर नियमपूर्वक परमात्माका ध्यान करती, जिसके प्रभावसे उसका अन्तःकरण पवित्र होता गया। वह मन-इन्द्रियोंको संयम करके नित्य गीता-रामायणका स्वाध्याय और भगवान्‌के पवित्र नामोंका जप किया करती तथा बिना किसी द्रोह-द्वेषके वह मन-ही मन अपने पतिदेवके विचार शुद्ध हों, इसके लिये कातर प्रार्थना करती।

उसकी जेबमें घरकी रोकड़के हिसाबके पाँच रुपये थे, उन्हींसे उसने अपने भावी जीवनका कार्यक्रम सोचा। दूसरे दिन, वह चार आनेमें सूआ, पौने दो रुपयोंमें रंगीन सूत, आठ आनेमें अपने लिये आटा, दाल और मसाला, चार पैसेमें दोने-पत्तल तथा दो रुपये सात आनेमें एक बाल्टी और तसला खरीदकर ले आयी। उसने तसलेमें आटा गोंदा और उसे पत्तलपर रख दिया। फिर तसलेको उलटकर उसीपर रोटी सेंक ली। रोटी पत्तलपर रखकर तसलेको धोकर उसीमें दाल पका ली। इस प्रकार अपना भोजन तैयार कर लिया। भोजन करनेके बाद दिनमें उसने सूतके गंजी और मोजे बना लिये, जिनको बाजारमें बेचकर साढ़े तीन रुपये कर लिये। रोज इसी प्रकार वह पौने दो रुपये कमाने लगी, जिसमें बारह आनेमें दोनों समयके भोजनका सामान ले आती और एक रुपया जमा रख लेती। पंद्रह दिनोंमें पंद्रह रुपये हो जानेपर उसने पाँच रुपये मासिक किरायेमें एक घर ले लिया, पाँच रुपयेके रसोईके बरतन और खरीद लायी तथा पाँच रुपयेका सूत ले आयी।

इसके बाद सुशीलाने शहरमें सूचना कर दी कि साड़ी, लहँगा, ओढ़ना, चद्दर, दुपट्टा आदिपर किसीको बेल-बूटे कढ़ाने, दोहे-चौपाई, श्लोक आदि लिखवाने हों तो मेरे घरपर भेज दें। लोग उसके पास भेजने लगे। उसके लिखे हुए बड़े ही सुन्दर और आकर्षक दोहे, चौपाई, श्लोक और बेल-बूटे आदिको देखकर लोग उसकी शिक्षा और कारीगरीपर मुग्ध होने लगे। सुशीलाके इस कार्यसे डेढ़ सौ दो-सौ रुपये महीनेकी आय होने लगी। सालभरके बाद उसने एक बड़ा मकान किरायेपर लेकर उसमें एक कन्या-पाठशाला खोल दी, जिसमें बहुत-सी लड़कियोंको बिना शुल्कके ही वह व्याकरण, गीता, रामायण आदि हिंदी-संस्कृतके ग्रन्थ पढ़ाने लगी। वह उनको विद्याके साथ कारीगरीका काम भी सिखाती थी। लड़कियाँ उसके पास जो चीजें तैयार करतीं, उनको वह बाजारमें बिक्री कर दिया करती, जिससे प्रतिमास उसके दो-सौ रुपयोंकी बचत होने लगी। इस प्रकार सालभरमें उसका सब खर्च लगाकर उसके पास दो हजार रुपयोंकी बचत हो गयी।

उसके बाद उसने थोड़ी जमीन खरीदकर एक कच्चा घर बना लिया और एक गाय खरीद ली तथा एक नौकर भी रख लिया, जो गायका तथा घरका सब काम-काज कर देता। इस प्रकार करते-करते दूसरे वर्ष उसके पास पाँच हजार रुपये बच गये।

तीसरे वर्ष वह निजका रेशम, सूत और कपड़ा खरीदकर उनपर गीता-रामायणके श्लोक, दोहे, चौपाई और सुन्दर-सुन्दर बेल-बूटे बनाकर सत्यता और न्यायपूर्वक क्रय-विक्रय भी करने लगी तथा दूसरे लोग जो अपने कपड़ोंपर बेल-बूटे, दोहा, चौपाई लिखवाने आते, उनका काम भी करने लगी। उसके सत्य, न्याय, विनय और प्रेमयुक्त व्यवहारका जनतापर बहुत अच्छा असर पड़ने लगा। इस प्रकार व्यापार करते-करते उसके पास पंद्रह हजार रुपये हो गये एवं उसके सब तरहका खर्च लगकर प्रतिमास करीब एक हजार रुपये बचने लगे। इस तरह रुपये बढ़ जानेसे शहरमें उसकी बहुत ही ख्याति हो गयी। फिर वह एक धनी व्यक्तिकी तरह बहुत ही इज्जतके साथ रहने लगी। उसने अपनी जमीनपर एक पक्का मकान भी बना लिया तथा कई आदमी रख लिये और उसका व्यापार खूब चलने लगा। उसके चरित्र और गुण तो सर्वथा शुद्ध, सात्त्विक और आदरणीय थे ही, उसके कार्य-व्यवहारसे भी ख्याति फैल गयी। उसके हृदयमें दीन, दुखी, अनाथ, गरीब, अपाहिज लोगोंके प्रति बड़ी ही दया थी, इस कारण वह उनको आवश्यकतानुसार अन्न-वस्त्र आदिका निष्कामभावसे दान करने लगी। वह नित्य रसोई बनाकर भगवान्‌के भोग लगानेके बाद बिना मन्त्रोंके बलिवैश्वदेव करती और फिर पहले अतिथियोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करती।

( ६ )

इधर साध्वी सुशीलाको घरसे निकाल देनेके कारण शहरमें उसके सास-ससुर और जेठ-जेठानी आदि सभी लोगोंकी निन्दा होने लगी तथा घरमें आपसकी अनबन और विवेककी कमीके कारण धीरे-धीरे घरकी सम्पत्ति नष्ट होने लगी।

एक दिनकी बात है कि बहिन रोहिणीके पास उसी मुहल्लेकी एक स्त्री आयी और बोली कि आज मुझे पचास रुपयोंकी बहुत ही आवश्यकता है। यदि तुम रुपये दे सको तो मैं तुम्हें उनका दो रुपये प्रतिशत ब्याज दे दूँगी। उसे भले घरकी स्त्री समझकर रोहिणीने पचास रुपये दे दिये। वह रुपये लेकर घर चली गयी। कुछ देर बाद ही वह वापस आयी और एक रुपया देकर कहने लगी—'आपने पचास रुपयोंकी जगह इक्यावन रुपये गिन दिये हैं, इसलिये मैं वापस आयी हूँ। अपना एक रुपया ले लें।' इसका रोहिणीपर अच्छा असर पड़ा। उसने रुपया ले लिया और सोचा—यह बड़े घरानेकी अच्छी स्त्री है। पंद्रह दिन ही बीते थे कि उसने वे पचास रुपये और उनका एक महीनेका ब्याज एक रुपया रोहिणीको दे दिया। तब रोहिणीने कहा—'आप ये रुपये कुछ दिन और रख सकती हैं।' वह बोली—'मुझे जरूरत होगी, तब ले लूँगी। अभी जरूरत नहीं है।' ऐसा कहकर वह चली गयी।

कुछ दिनोंके बाद वह फिर आयी और बोली—'आज मुझे दो सौ रुपयोंकी आवश्यकता है, उधार दे सकती हैं क्या?' रोहिणीने झट रुपये निकालकर दे दिये। दस दिन बाद ही उस स्त्रीने दो सौ रुपये और उनके एक महीनेके ब्याजके चार रुपये, इस प्रकार दो-सौ चार रुपये लौटा दिये। इससे रोहिणीके दिलमें और भी विश्वास जम गया।

कुछ दिनोंके पश्चात् वह फिर एक दिन आयी और रोने लगी। रोहिणीके पूछनेपर उसने कहा—'हमारे कुटुम्बमें विवाह है। क्या करूँ? मेरा सारा गहना हमारे घरवालोंने बन्धक रख छोड़ा है और बिना गहने विवाहमें जानेसे बेइज्जती होती है, अतः आप तीन दिनको विवाहमें पहननेके लिये कृपापूर्वक मुझे अपना गहना दे दें तो हमारी इज्जतकी रक्षा हो जाय।' रोहिणीको उसपर विश्वास था ही, उसने अपना सब गहना निकालकर उसे दे दिया। वह स्त्री गहना लेकर अपने घर चली गयी। किंतु जब वह पाँच दिनोंतक लौटकर नहीं आयी तो रोहिणी उसके घरपर गयी और उसने पूछा—'बहिन! तुम्हारे विवाहका काम हो गया क्या?' उस स्त्रीने कहा—'हमारे यहाँ तो किसीका विवाह था ही नहीं।' रोहिणी बोली—'आपके कुटुम्बमें विवाह था, उसके लिये आप मेरे पास गहना लेने गयी थीं न।' उसने उत्तर दिया—'हमारे न तो कोई विवाह था, न कोई गहनेकी हमें आवश्यकता ही थी। हमारे अपने पास ही बहुतेरे गहने हैं, हम तुम्हारे पास गहनेके लिये क्यों जातीं?' रोहिणी बोली—'आप मेरे पास कई बार गयीं, रुपये-पैसोंका भी आपसमें कई बार लेन-देन हुआ, फिर आज आप इस तरह मेरे सामने झूठी बातें क्यों बोल रही हैं?' उसने कहा—'वाह री वाह! झूठी बातें मैं बोल रही हूँ कि तू। हम तो

स्वयं रुपयोंका व्याज उपजाते हैं, हमारे तो रुपयोंकी कोई कमी नहीं है, मैं क्यों जाती तुम्हारे पास रुपया लाने ? हमारे यहाँ तो रुपये-पैसोंका काम पड़ता है,तो पुरुष ही सब किया करते हैं। हमारे घरके पुरुष यदि ये बातें सुन लेंगे तो तुम्हारी बेइज्जती करेंगे।'

उसकी बातें सुनकर रोहिणीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अपने घर लौट आयी और दुःखित हृदयसे अपने पिता और भाइयोंके सामने रोने लगी। उसकी बातें सुनकर उसके पिता और भाईने पूछा—'उस स्त्रीको तुमने जो गहना दिया है उसकी कोई लिखा-पढ़ी है ? क्या और उस समय कौन हाजिर था ?' रोहिणी बोली—'मैंने तो उसके विश्वासपर गहना दे दिया, कोई लिखा-पढ़ी नहीं की और न उस समय वहाँ कोई दूसरा था ही।' पिता और भाइयोंने कहा—'जब उसकी कोई लिखा-पढ़ी और गवाही ही नहीं, तब इसका कोई उपाय नहीं। ऐसा काम तुमको हमसे बिना पूछे नहीं करना चाहिये था।' सब लोग सिर पीटकर रह गये !

एक दिनकी बात है, पण्डित देवदत्तजीके पास एक साधु-वेषधारी ठग आया। पण्डितजीने उसकी बहुत सेवा-शुश्रूषा की। साधुने पण्डितजीसे पूछा—'योग-क्षेम ठीक चलता है न ?' पण्डितजी बोले—'जबसे छोटी बहू घरसे चली गयी, तबसे घरमें कलह-क्लेश रहते हैं। संसारमें हमारी निन्दा होनेसे जीविका भी प्रायः नष्ट हो गयी और सट्टे-फाटकेमें घाटा लग जानेके कारण लड़कोंका व्यापार भी बंद हो गया तथा मोहनलालके व्यापारका कोई संयोग लगा नहीं।' साधुने कहा—'मैं तुमको एक रसायन-विद्या बतला देता हूँ जिससे तुम रोज दो माशा सोना बना लिया करो; पर अधिक लोभ नहीं करना।' साधुवेषधारीने फिर कहा—'अच्छा ! तुम बाजारसे चार आनेका संखिया, चार आनेका गन्धक, चार आनेका पारा, एक कुठाली और कुछ कोयला ले आओ।' वे तुरंत ले आये। उस ठगने अपनी झोलीसे चौलाईके पत्ते निकालकर उसके रससे संखिया, गन्धक और पाराके पुट देकर उसको पण्डितजीके हाथसे कुठालीमें डलवा दिया तथा कोयलोंसे कुठालीको भरकर गोइठोंसे आग जला दी, जिससे कोयले जलने लगे। ज्यों-ज्यों कोयले जलते गये, त्यों-त्यों पण्डितजी उसमें और कोयले डालते गये। जो कोयले डाले जा रहे थे, उनमेंसे उस ठगने पण्डितजीकी दृष्टिको बचाकर एक कोयलेके अंदर छेदकर उसमें दो माशा सोना पहलेसे ही भर दिया था। कोयला गिराते-गिराते जब स्वर्णवाला कोयला कुठालीमें पड़ गया; तब उसने और कोयला डालना बंद करवा दिया। संखिया, गन्धक और पारा तो उड़ गया और कोयले जल गये, केवल दो माशा सोना था, वह कुठालीमें रह गया।

स्वर्णको देखकर पण्डितजीकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। साधुवेषधारी ठग चला गया। उसके जानेके बाद पण्डितजीने संखिया, पारा और गन्धक आदिका काफी स्टाक कर लिया तथा रोज साधुरूपधारी असाधुके कहे अनुसार करने लगे, पर बनता-बनाता कुछ नहीं। एक दिन उसीको घरके सामनेसे जाते देखकर पण्डितजी उसके चरणोंमें गिर गये और उसको घरपर लाकर बड़ी सेवा की। साधुवेषधारीने पूछा—'योग-क्षेम ठीक चलता है न ?' पण्डितजीने कहा—'नहीं। आपने तो मुझसे कोई छिपाव नहीं किया, परंतु मेरे भाग्यकी बात है कि रोज संखिया, पारा और गन्धक फूँकता हूँ, पर होता कुछ नहीं। साधुवेषधारी बोले—'अच्छा ! आज हमारे सामने तुम अपने-आप सब विधि करो, कोई गड़बड़ होगी तो हम तुमको बतला देंगे।' जब पण्डितजी भीतरसे सब सामान लाने गये तो बाबाजीने एक कोयलेके अंदर छेदकर दो माशा स्वर्ण उसमें रख दिया। सामग्री तो सब पण्डितजीके पास थी ही, शीघ्र ही लेकर आ गये तथा गन्धक, पारा और संखियाको चौलाईके रसकी भावना देकर कुठालीमें डाला और कुछ कोयला डाल दिया। ज्यों-ज्यों कोयला जलता जाता, त्यों-त्यों पण्डितजी चिमटेसे और कोयलोंको उठा-उठाकर कुठालीमें डालते जाते। वह ठग अलग दूर बैठा देख रहा था। उसने जब देखा कि स्वर्णवाला कोयला भी कुठालीमें शामिल हो गया है तो उसने कहा—'पूरा एक घंटा हो गया है, अब सोना बन जाना चाहिये। तुम उठकर देखो, अब और कोयला मत डालो।' थोड़ी देरमें कोयले सब जल गये। संखिया, पारा, गन्धक सब उड़ गया। केवल दो माशा सोना कुठालीमें रह गया। पण्डितजी सोनेको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'महाराज ! अब तो मैं बिल्कुल समझ गया।' तब वह ठग वहाँसे चला गया।

पण्डितजी रोज संखिया, पारा और गन्धक फूँकते रहे, पर बनता-बनाता कुछ नहीं। फिर पाँच-सात दिन बाद वही साधु दरवाजेके आगे सड़कपर आता दिखलायी दिया। पण्डितजी दौड़कर उसके चरणोंमें गिर गये। उसने पूछा—'अब तो गृहस्थीका काम ठीक चलता है न ?' पण्डितजी-

ने कहा—'कुछ नहीं। आपने तो सब बातें बतला दीं, हमारे हाथसे भी कराकर दिखा दिया, परंतु होता कुछ नहीं। न मालूम क्या बात है? आपके सम्मुख तो आपके प्रभावसे हो जाता है, आप नहीं रहते तब नहीं होता।' वह बोला—'हम रोज-रोज तो आ नहीं सकते। लो, हम एक साथ ही तुम्हारे लिये इतना सोना बना देते हैं कि तुम्हारे जन्मभर काम आवे। तुम्हारे घरमें जितना सोना है, सब ले आओ। सब सोना एक हँडियामें डालकर आगपर चढ़ा दो तथा उस हँडियाको जलसे भर दो और तुम्हारे पास जितना कुछ गन्धक, पारा, संखिया है, वह सब उसमें डाल दो और उसपर मिट्टीकी खाम लगा दो। फिर उस हँडियाके ऊपर एक दूसरी हँडिया जलसे भरकर रख दो। आठ पहर-तक उसके नीचे आग लगाते रहो। उसके बाद खोलकर देखोगे तो सोना दुगुना मिल जायगा।'

पण्डितजीने प्रसन्नचित्त हो अपनी स्त्रीका सारा-का-सारा गहना एक हँडियामें भरकर जैसे उसने बतलाया, वैसे ही सब क्रिया की। किंतु ऊपरकी हँडियामें जल कम रहा, अतः वे जल लानेके लिये भीतर गये। पीछेसे बाबाजीने झट हँडियासे सारा गहना निकालकर अपनी झोलीमें रख लिया और उसमें उतने ही वजनके कंकड़-पत्थर भर दिये तथा हँडियाके पहलेकी तरह ही मिट्टीकी खाम लगा दी। इतनेमें ही पण्डितजी जल लेकर आ गये और ऊपर रक्खी हुई हँडियामें जल भर दिया। हँडिया कुछ टेढ़ी हो गयी थी, अतः पण्डितजीने उसको उठाकर सीधी कर दी। उठाते समय उनको हँडिया पहलेकी तरह ही भारी मालूम दी।

बाबाजी दो-तीन घंटे तो बैठे रहे, फिर कहने लगे कि 'कल हम इसी समय आकर हँडियाकी खाम खोल देंगे, तब दुगुना सोना मिल जायगा।' यह कहकर वह चल दिये। दूसरे दिन समयपर पण्डितजी बाबाजीकी प्रतीक्षा करते रहे, किंतु बाबाजी दिनभर नहीं आये। आते कहाँसे, वे तो अपना काम बनाकर चम्पत हो गये थे। तब तीसरे दिन पण्डितजीने स्वयं ही खाम खोली तो उसमें सब कंकड़-पत्थर निकले। पण्डितजीको बड़ा सन्ताप हुआ, उन्होंने सारा हाल अपने घरवालोंसे कहा। सब लोग यह सुनकर दुखी हुए। साधुकी बहुत खोज-खाज की, किंतु उसका कुछ भी पता नहीं लगा। वह साधु थोड़े ही था, वह तो समाजमें सच्चे साधु-संन्यासियोंपर भी सन्देह उत्पन्न करा देनेवाला धूर्तशिरोमणि चोर था!

एक दिनकी बात है, उनके मुहल्लेमें एक लाल कपड़े-वाली एक ठगिनी आयी और उसने वहाँ एक मकान किराये लेकर अपना अड्डा जमा लिया। उसने अपनेको तन्त्र-मन्त्रोंमें सिद्धिप्राप्त योगिनी बतलाया। उसके पास स्त्रियाँ कोई रोग-निवारणके लिये, कोई पुत्रके लिये, कोई धनके लिये, कोई अपने लड़के-लड़कियोंकी विवाह-शादीके लिये—इस प्रकार अनेक कामनाओंको लेकर आने लगीं। वह योगिनी किसीके डोरा, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र बाँध देती और किसीसे टोना कराती। इस प्रकार कराकर वह उनकी कार्य-सिद्धिके लिये उनमेंसे किसीको सालभरकी, तो किसीको छः महीनेकी और किसीको दो महीनेकी अवधि दे दिया करती। इस प्रकारकी धूर्तताद्वारा वह भोली-भाली स्त्रियोंसे गहने, कपड़े और रुपये ठगने लगी।

एक दिन रामदत्तकी स्त्री भगवानदेवी भी उसकी प्रशंसा सुनकर उसके पास पहुँच गयी और कहने लगी—'माताजी! मेरे कोई लड़का नहीं है, इसलिये ऐसा कोई उपाय बतलाओ, जिससे मेरे सालभरमें लड़का हो जाय।' योगिनीने कहा—'एक महीनेके अंदर ही तुम्हारे गर्भ रह जायगा। आनेवाले शनिवारकी रातको मैं तुमसे एक टोना कराऊँगी। तुम उस रातको दस बजे यहाँ आना। टोनेकी सामग्री तो सब हमारे पास मिल जायगी, तुम केवल गहने-कपड़े पहनकर सोलह श्रृंगार करके शनिवारकी रातको मेरे पास चली आना।' भगवानदेवीने वैसा ही किया। वह शनिवारकी रातमें सज-धजकर उसके पास गयी। योगिनीने उसके सब गहने-कपड़े खुलवाकर एक कोठरीमें रखवा दिये और कोठरीको बंद करके ताला लगाकर चाभी भगवानदेवीको सौंप दी। जब रात्रिके ठीक बारह बजे, तब योगिनी सिंदूर, तेल, मिट्टीका बरवा और तिकटी लेकर भगवानदेवीके साथ चौराहेपर गयी। चौराहेपर जाकर उसने तिकटीपर बरवा टिकाकर उसमें तेल और सिंदूर डाल दिया तथा भगवानदेवीको एक मन्त्र बतलाकर कहा—'तुम इस मन्त्रका यहाँ एक घंटे जप करती रहो। रातका समय है, घर सूना है, मैं घरकी रखवालीके लिये जाती हूँ। एक घंटेके बाद इस बरवेको लेकर मेरे पास चली आना।'

योगिनी मकानपर पहुँची और कोठरीके तालेमें दूसरी चाभी लगाकर उसमें जो गहने-कपड़े रक्खे थे, सब लेकर वहाँसे चल दी। जब भगवानदेवी एक घंटेके बाद उसके घरपर आयी तो देखा कि वहाँ योगिनी नहीं है और

कोठरी खुली पड़ी है। कोठरीमें गहने-कपड़े कुछ भी नहीं हैं। यह देखकर वह रोने लगी। वह दुःखित हृदयसे लज्जित होकर अपने घरपर लौट आयी तथा घरवालोंको अपनी सारी दुःखकी कहानी कही। घरवालोंने उसको बहुत फटकारा। इसके बाद उन्होंने योगिनीकी बहुत खोज की, किंतु कुछ भी पता नहीं चला। तब मकान-मालिकसे उसका पता पूछा। मकान-मालिकने कहा—'हमको तो उसने एक महीनेका भाड़ा अग्रिम दे दिया था और हमारे यहाँ तो रोज ही ऐसे मुसाफिर आते-जाते रहते हैं। हमको क्या पता कि वह योगिनी कौन थी और कहाँ गयी ?'

इन सब घटनाओंको देख-सुनकर सोमदत्तकी स्त्री रामदेवीने सोचा—'बहिन रोहिणीका, सासजीका, हमारी देवरानीका सब-का-सब गहना चला गया, केवल मेरा गहना ही शेष बचा है। छोटी बहूके जानेके बाद पैदा-रोजगार सब बंद हो गया है। अब घरवाले मेरे गहनोंको ही बेचकर काम चलायेंगे, और कोई रास्ता नहीं दीखता है।' यह सोचकर वह अपना सारा गहना अपने छोटे भाईके पास नैहरमें रख आयी। उसका नैहर उसी शहरमें दूसरे मुहल्लेमें था। उसका भाई बड़ा बदमाश और बेईमान था, उसकी नीयत पहलेसे ही खराब थी। उसने रामदेवीका सारा गहना बेचकर रुपये अपने कारबारमें लगा लिये। थोड़े दिनों बाद उसने यह झूठा हल्ला फैला दिया कि रातमें चोर आकर ताला तोड़कर सारा माल ले गये। प्रातःकाल होते ही वह रोने लगा। लोग इकट्ठे हो गये। पुलिस भी आ गयी। सारे शहरमें बात फैल गयी, तब रामदेवीको भी अपने भाईके यहाँ चोरी होनेका पता लगा। वह तुरंत दौड़कर भाईके पास गयी और बोली—'भैया! मेरा गहना तो बच गया है न ?' भाईने झुँझलाकर कहा—'तेरे गहनेके कारण ही तो हमारे घर यह काण्ड हुआ। हमारे पास तो धरा ही क्या था, जो चोर लगते ? हमारे तो जो कुछ था, वह भी तुम्हारे गहनेके साथ चोर ले गये।' रामदेवी फिर बोली—'भैया! मेरा गहना तो मिलना ही चाहिये।' भाई कुपित होकर कहने लगा—'चल यहाँसे। फिर कभी मुँह मत दिखाना। तेरे कारणसे ही हम बरबाद हो गये।' वह बेचारी दुःखित होकर लौट आयी और सारा हाल अपने ससुरालवालोंको कहा। उन्होंने डाँट-फटकार भी की; पर फिर क्या हो सकता था!

तदनन्तर सब लोगोंने मिलकर यह निश्चय किया कि अपना-अपना खर्च सब अपनी-अपनी कमाईसे चलावें। इसपर सोमदत्त और रामदत्त तो अपनी स्त्रियोंको लेकर अलग रहने लगे और शेष सब एक साथ रहने लगे।

( ७ )

एक दिन जब सब घरवाले घरमें इकट्ठे बैठे हुए थे, पण्डित देवदत्तजीने सरल हृदयसे कहा—'हमने थोड़ेसे अपराधके कारण छोटी बहूको घरसे निकाल दिया; यह बड़ा भारी अपराध किया। इसी कारण हमारी यह दुर्दशा हुई। वह बड़ी भाग्यशालिनी, बुद्धिमती और उच्च विचारकी स्त्री थी। यदि वह अपने घरमें रहती तो हमलोगोंपर यह सब विपत्तियाँ कभी नहीं आतीं।' अन्तमें सबने यह विचार किया कि हमलोगोंको उसके पास चलना चाहिये। पर लज्जाके कारण किसीकी भी जानेकी हिम्मत नहीं होती थी। किसी प्रकार घरकी यह भीतरी खबर सुशीलाके पास पहुँच गयी। सुशीलाने सोचा—'मेरे घरवाले मेरे पास आना चाहते हैं, पर इसमें मेरा बड़प्पन नहीं है। इसलिये मुझे ही उनके पास चलना चाहिये।' यों सोचकर दूसरे दिन वह स्वयं ही ससुरालमें चली आयी और श्रद्धा, प्रेम, विनय तथा सरलताके साथ सबके चरणोंमें नमस्कार किया। उसको देखकर सब प्रसन्न हुए और साथ ही अपने कृत्यको देखकर दुःखित और लज्जित हुए। सुशीलाने कहा—'मैंने सुना कि आपलोग मेरे पास आनेका विचार कर रहे हैं, यह सुनकर मैं ही आपके पास आ गयी, क्योंकि मैं सबसे छोटी हूँ। इसलिये मेरा ही आपके पास आना उचित है। कभी-कभी मेरे मनमें आपकी सेवाके भाव आते, किंतु आपलोगोंके द्वारा निकाली जानेके कारण यहाँ आनेकी मेरी हिम्मत नहीं हुई; इसलिये आप मेरे अपराधको क्षमा करें।'

पण्डितजीने कहा—'बेटी! तुम्हारा तो एक मामूली अपराध था, हमलोगोंने बहुत बड़ा अपराध कर डाला।' पण्डितजीको क्या पता कि बहूका कोई अपराध था ही नहीं, वह तो षड्यन्त्र था। घरकी हालत बिगड़ जाने तथा सबपर विपत्ति आ जानेसे षड्यन्त्रकारी स्त्रियोंका पाप काँप गया। उनके मनमें ईर्ष्याके बदले पश्चात्तापकी आग जल उठी। वे सभी सन्तप्त हो गयीं और उन्हें निश्चय हो गया कि हमारी दुर्दशाका सच्चा कारण हमारे द्वारा निर्दोष सुशीलापर किया जानेवाला अत्याचार ही है। उनके सन्तप्त हृदयके तप्ताश्रु उनकी आँखोंसे बहने लगे। तब सोमदत्त और रामदत्तकी स्त्रियोंने हाथ जोड़कर काँपते हुए कण्ठसे अपनी साससे कहा—'छोटी बहूका कुछ भी अपराध नहीं था। हमीं लोगोंने डाहके

कारण इसपर झूठा कलङ्क लगाया था, उसीका हमें यह फल मिला।' तब रोहिणी दुःखित हृदयसे कहने लगी—'छोटी भाभीका तो कुछ भी अपराध है ही नहीं और न बड़ी भाभियों-का ही कोई विशेष अपराध है। सारे षड्यन्त्रको रचनेवाली, घोर अपराध करनेवाली दुष्टा तो मैं हूँ। मैंने ही भाभियोंके कङ्कण, हार, मेरी साड़ी और लहँगा एक थैलीमें भरकर उसे सीकर रसोइयाके हाथ उस बुढ़ियाके पास भिजवाया था, वह चिट्ठी भी मैंने ही लिखी थी और पिताजीके पास झूठी शिकायत भी मैंने ही की थी। इस सारे पापकी जड़ मैं हूँ। आज मैं पश्चात्तापकी आगसे जली जा रही हूँ। पृथ्वी फट जाय तो मैं उसमें समा जाऊँ। इस निरपराध शुद्ध हृदयकी भाभीसे मैं क्षमा भी किस मुँहसे माँगूँ?'

यह सारी सच्ची बातें सुनकर सुशीलाका मन पिघल गया और वह हाथ जोड़कर विनयपूर्वक सबसे बोली—'जो कुछ भी हुआ, अब आप उन बातोंको हृदयसे भुला दें। मैं तो आपलोगोंके कृत्यको कोई अपराध ही नहीं मानती। फिर क्षमा कैसी?' यह सुनकर उसका पति मोहनलाल फूट-फूटकर रोने लगा और अपने किये हुएपर बार-बार पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा—'मैं धोखेसे मारा गया। अब मुझे इसका क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये?' सुशीलाने कहा—'पतिदेव! आप किसी बातका विचार न करें। आपलोगोंका किसीका भी कोई दोष नहीं है—यह तो मेरे पूर्वकृत पापोंका फल है। अब आपलोग इन सब बातोंको भुला दें और मुझे पहलेकी तरह ही अपनी दासी समझें। मेरे पास जो कुछ सम्पत्ति है, वह आपकी ही है। आप उस सम्पत्तिको यहाँ मँगवा लें।'

यह सुनकर सब लज्जित हो गये और कहने लगे—'तुम्हारी सब चीजें हम कैसे मँगवायें?' सुशीला बोली—'वह सब तो आपकी ही है, मैं भी आपकी ही हूँ। यह सब तो ईश्वरने हमारे भलेके लिये ही किया था; क्योंकि यदि भगवान् ऐसा नहीं करते तो आज यह सम्पत्ति और हजार रुपये मासिक आयका स्थायी संयोग कैसे बैठता?' यह कहकर सुशीलाने अपनी सारी चल सम्पत्ति अपने आदमियोंद्वारा वहीं मँगवाकर निःस्वार्थ-भावसे ससुरके चरणोंमें अर्पित[23] कर दी। उसके अन्य सब काम भी ससुरालवालोंकी देख-रेखमें वैसे ही चलते रहे और वह अब ससुरालमें ही रहने लगी। सुशीलाके इस पवित्र[24] व्यवहारको देखकर सब लोग मुग्ध हो गये।

जब खेलकर आते हुए इन्द्रसेन और इन्द्रसेनीने माको बहुत दिनोंके बाद देखा तो वे झट उसके चरणोंमें गिर पड़े। माने उनको उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया। रसोइया और नौकर तो अपने भीषण अपराधपर काँप रहे थे और जमीनमें गड़े-से जा रहे थे। उनके शरीरसे पसीना बह रहा था और आँखोंसे पश्चात्तापके गरम-गरम आँसू। उनका मूक पश्चात्ताप देखकर सुशीलाने उन्हें आश्वासन दिया और शान्त किया। आज उन दोनोंका भी जीवन बदल गया!

फिर सुशीलाने कहा—'मैंने सुना है, हमारे दोनों जेठ-जेठानियाँ अलग होकर रहते हैं, किंतु उनका अलग रहना मैं सहन नहीं कर सकती। वे पहलेकी ज्यों ही शामिल होकर रहनेकी कृपा करें।' वे सुशीलाके इस बर्तावको देखकर मुग्ध हो गये, वे 'ना' नहीं कर सके। तदनन्तर सभी शामिल होकर रहने लगे। सुशीलाके प्रभावसे सब सदाचारी और सच्चरित्र बन गये। उनके सम्बन्धमें जो कुछ अपवाद फैला हुआ था, वह सब शान्त हो गया और उनका घर अन्य सब लोगोंके लिये एक आदर्श घर हो गया।

( ८ )

सुशीला सबके साथ समव्यवहार किया करती। जो कुछ आप खाती-पहनती, वह घरमें सबको समान भावसे देकर खाती-पहनती। उसका खाने, पीने, पहननेमें कोई भेद नहीं था। जो चीज वह अपने पति और बालकोंको खिलाती-पहनाती, वही अपने जेठ-जेठानियों और सास-ससुरको भी दिया करती।

एक दिनकी बात है, वह अपने बच्चे-बच्चीको दाख, छुहारा, बादाम, नौजा, पिश्ता आदि मेवा दे रही थी, इतनेमें ही उन बालकोंके साथ खेलनेवाले बाहरके कुछ बालक आ गये। सुशीलाने अपने बालकोंको न देकर पहले उनको दिया और जो कुछ अपने बालकोंको दिया, उतना ही उनको दिया; किंतु उनमें जो चीज कुछ बढ़िया थी, वह तो बाहरके बालकोंको दी और जो कुछ घटिया थी, वह अपने बालकोंको दी। सुशीलाके इस बर्तावका उसके बच्चोंपर भी बड़ा अच्छा असर पड़ा। उन्होंने अपने हिस्सेका भी आधा भाग उन बाहरके बालकोंको दे दिया। उसके लड़के-लड़की बड़े सुशील थे। सच्ची सुशीला माताके लड़के ऐसे क्यों न होते?

सुशीला अपने पतिकी विशेष सेवा किया करती थी और कभी-कभी अपने पतिके साथ कथा या व्याख्यान सुनने जाया करती तो साथमें उसका लड़का और लड़की भी जाया करते थे।

बालकोंमें स्वाभाविक ही चञ्चलता होती है, किंतु इसके बालक शान्त प्रकृतिके थे। क्योंकि सुशीलाका स्वभाव स्वाभाविक ही चञ्चलतारहित था। वे वहाँ शान्तिपूर्वक चुपचाप बैठकर बड़े ध्यानसे व्याख्यान सुना करते। सुशीला बालकोंको नित्य-नियमपूर्वक अच्छी शिक्षा दिया करती थी। वह कहा करती—'सूर्योदयसे पूर्व उठना, नित्य बड़ोंको प्रणाम करना; झूठ, कपट, छिपाव, हिंसा, चोरी आदि कभी नहीं करना; हमेशा सत्य बोलना; किसीको अपशब्द न कहना; आपसमें लड़ाई, मार-पीट, गाली-गलौज नहीं करना; सूर्यनारायणको नित्य अर्घ्य देना; कोई भी चीज भगवान्के अर्पण किये बिना न खाना; सबकी सेवा करना; बाजारकी बनायी हुई चीजें न खाना; बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, भाँग, गाँजा आदि मादक वस्तुओंका सेवन न करना; नाटक, सिनेमा, क्लब आदिमें कभी नहीं जाना; कथा-कीर्तन, सत्सङ्गमें शान्तिपूर्वक सुनना; कोई भी चीज मिले, उसे उपस्थित मित्रोंको देकर खाना, बड़ोंकी आज्ञाका पालन करना और सदा कर्तव्यपरायण रहना चाहिये। कहीं दूसरेके घरपर जायँ तो वहाँ कोई चीज माँगनेकी तो बात ही क्या, उनके देनेपर भी नहीं लेनी चाहिये। बस, अपनेसे जो कुछ बने, दूसरोंकी सेवा करनी चाहिये, कभी दूसरोंकी सेवाका पात्र नहीं बनना चाहिये।' बच्चोंके लिये कितनी सुन्दर शिक्षा है।

इस प्रकार घरमें नित्य-नियमसे उपदेशकी बातें और कथा-कीर्तन हुआ करता था। इसका बालकों तथा घरवालोंपर बड़ा अच्छा असर पड़ने लगा, और वे सब सुशिक्षित हो गये।

( ९ )

एक दिन सुशीलाके पिता पण्डित गोविन्दरामने उसको बुलानेके लिये उसके ससुरके पास आदमी भेजकर कहलाया—'हमारी एक प्रार्थना है—सुशीलाको आये बहुत दिन हो गये, अतः एक बार बच्चोंसहित उसको हमारे घरपर भेजें।' बुलावा आनेपर सुशीलाने भी सरलताके साथ निवेदन किया कि—'मुझे माता-पितासे मिले बहुत दिन हो गये, इसलिये आपकी आज्ञा हो तो मैं घर जाकर उनके दर्शन कर आऊँ और आपकी अनुमति हो तो मैं वहाँ कुछ दिन ठहर जाऊँ।' सास और ससुरने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'जा सकती हो; किंतु बहुत अधिक विलम्ब न करना; क्योंकि हमारे दिन तुम्हारे बिना कैसे कटेंगे?' इस प्रकार कहकर विश्वासी पुरुषको साथ देकर उसको नैहर पहुँचा दिया।

सुशीलाने बालकोंसहित वहाँ जाकर माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। माता-पिताने पूछा—'घरपर सब प्रसन्न तो हैं?' सुशीला बोली—'ईश्वरकी कृपासे सब कुशल है; किंतु मैं यहाँ अपने भाई रामलाल और भौजाईको नहीं देखती हूँ, सो क्या बात है?' पण्डित गोविन्दरामजीने कहा—'वह कई दिनोंसे मकान किराये लेकर हमसे अलग ही रहता है; जो कुछ कमाता है, अपने खाने-पीने और मित्रोंकी खातिरमें लगा देता है। हमलोग तो अब बूढ़े हो गये, कमानेकी शक्ति नहीं रही, पहलेकी जायदादको बेचकर ही अपना काम चलाते हैं।' सुशीला बोली—'क्या भाभीके कहनेसे ही भैया अलग हो गये अथवा और कोई कारण है?' माताने कहा—'ना बेटी! वह तो बहुत ही भले घरकी लड़की है। मैं उसको कभी कुछ कह देती तो भी वह नाराज नहीं होती और न कभी रूठती। उसका स्वभाव बड़ा सुशील है, लड़ना तो वह जानती ही नहीं। कोई उसे खोटी-खरी सुना देता तो भी वह उसे हँसकर टाल देती। अब भी वह मेरा पक्ष लेकर समय-समयपर रामलालको समझाया करती है। उसके स्वभाव, सेवा और बिछोहको याद कर-करके मैं रोया करती हूँ। रामलाल भी बहुत ही भला था; किंतु आजकलके उद्दण्ड लड़कोंके सङ्गके प्रभावसे वह हमलोगोंसे अलग हो गया।'

सुशीला बोली—'मा! मैं भाई-भौजाईको समझाकर यहाँ ले आऊँ तो इसमें तुम्हारी क्या राय है?' माताने कहा—'ऐसा हो जाय तो बेटी! हमारा बड़ा सौभाग्य है।'

भाई रामलाल प्रयागमें ही कुछ दूर दूसरे मुहल्लेमें रहते थे। सुशीला अपने कुटुम्बके एक आदमीको लेकर बालकोंसहित भाईके यहाँ गयी। घरमें रामलाल तो थे नहीं, भाभी बैठी थी। सुशीलाको आते देखकर वह उठी और उसने बड़े ही आदर और प्रेमका बर्ताव किया। सुशीलाने भी बालकोंसहित उसके चरणोंमें प्रणाम किया। जब भाभी कुछ संकोच करने लगी, तब सुशीलाने कहा—'आप बड़ी होनेके कारण मेरे तो माके समान हैं, इसमें संकोचकी कौन-सी बात है। बड़ोंके चरणोंमें प्रणाम करना बालकोंका कर्तव्य ही है।' भाभी लज्जित होकर बोली—'बहिनजी! आप माताजीके पास आयी हैं, यह मुझे मालूम हो गया था, किंतु दुःखकी बात है कि मैं आपके भाईके डरसे नहीं जा सकी।'

सुशीलाने कहा—'इसके लिये आपको चित्तमें कोई विचार नहीं करना चाहिये । मा तो आपके स्वभाव और सेवाको याद कर-करके भूरि-भूरि प्रशंसा करती हुई आपके वियोगमें रोया करती हैं ।'

इतनेमें ही भाई रामलाल आ गये । सुशीलाने झट उठकर बालकोंसहित भाईके चरणोंमें नमस्कार किया। रामलालने भी सुशीलाके साथ बड़े आदरका बर्ताव किया। कुशल-संवादके बाद सुशीला बोली—'भैया ! आज तुमको माता-पितासे अलग देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है ।' रामलालने कहा—'बहिन ! तुम्हारे आनेकी खबर मुझे मिल गयी थी । तुमसे मिलनेकी मेरी बहुत ही इच्छा थी, परंतु मेरे मनमें यह भाव आया कि मैं यदि घर जाऊँ तो कहीं माता-पिता मेरा अपमान न कर दें और तुमको यहाँ घर-पर भी इसीलिये नहीं बुलाया कि शायद वे तुमको यहाँ नहीं भेजेंगे ।' सुशीला बोली—'भैया ! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, यह तो मेरा ही दोष है कि मैं कल ही तुम्हारा दर्शन नहीं कर सकी । पर भैया ! जब मैं ससुराल गयी थी तब तो तुम दोनों ही माता-पिताकी सेवा और आज्ञा-पालन खूब किया करते थे । तुम्हारे उन गुणोंको याद करके मुझे विस्मय होता है कि तुम उनसे अलग होकर कैसे रहने लगे ? मेरे व्यवहारकी त्रुटियाँ देखकर तुम तो मुझे शिक्षा दिया करते थे, वे बातें मुझे याद आती हैं ।'

रामलालने कहा—"बहिन ! तुम्हारी बातें सुनकर मुझे लज्जा होती है । मेरे अलग होनेका कारण यह हुआ कि मेरे मित्रगण, जो मेरे पास आया करते, वह माताजी और पिताजीको बुरा मालूम देता । इसे देखकर मेरे मित्रोंको अत्यन्त कष्ट होने लगा और उन्होंने मुझको यह राय दी कि 'तुम सब कुछ माता-पिताके पास छोड़कर उनसे अलग हो जाओ । इसमें तुम्हारी कोई निन्दा नहीं होगी । तुम विद्वान् हो, योग्य हो; तुमको अपनी कमाईसे पेट भरना चाहिये, माता-पिताके धनका आश्रय क्यों लेना चाहिये ।' उनकी इन बातोंमें आकर मैं माता-पितासे अलग हो गया । बहिन ! तुम समझदार हो, जैसा तुम्हारा नाम है, वैसी ही तुम गुणवती हो, अतः मुझे राय दो कि अब मुझे क्या करना चाहिये ?"

इसपर सुशीला बहुत ही कोमल और मृदुर्लताभरे शब्दोंमें बोली—'भैया ! तुम्हें मैं राय दूँ ! मुझमें जो कुछ अच्छापन दीखता है, वह तो तुम्हारी ही शिक्षाका प्रभाव है । मैं कुछ कहूँगी तो तुमसे सीखी हुई बात ही कहूँगी । मैं जब छोटी थी तभी तुम मुझे यही शिक्षा दिया करते कि सैकड़ों वर्ष भी माता-पिताकी सेवा करके मनुष्य उनका बदला नहीं चुका सकता । माता-पिताकी सेवा ही परम धर्म है और सब उपधर्म हैं ।* आज तुम्हें माता-पितासे अलग देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है । तथा तुम्हारे मित्रोंके सम्बन्धमें तो माता-पिताने जो कुछ भी कहा—वह तुम्हारे हितके लिये ही कहा होगा । जो मित्र माता-पितासे दूर कर दें, उनका सङ्ग किस कामका ? यदि तुम्हारे वे मित्र समझदार होते तो सहज ही मुक्तिके उपायरूप परम कल्याणकारी माता-पिताके सेवाकार्यसे तुम्हें वञ्चित क्यों करते ? इससे तुमको सोचना चाहिये था कि वे ऐसा करके अपना मतलब गाँठना चाहते थे कि तुम्हारा हित । भैया ! माता-पिता तो तुम्हारे वियोगमें तुम्हारे गुण और सेवाको याद करके रोया करते हैं । संसारमें तुम्हारे गुण और आचरणोंकी ख्याति है और अच्छे-अच्छे पुरुषोंके हृदयोंपर तुम्हारा अच्छा प्रभाव अङ्कित है । तुम माता-पितासे अलग होकर रहते हो, इससे उन सज्जनोंपर कैसा बुरा असर होगा और वे जब तुम्हारी निन्दा-अपमान करेंगे, तब उसे तुम कैसे सहन करोगे ? माता-पिताकी सम्पत्तिसे तुम्हें संकोच और घृणा क्यों होनी चाहिये ? माता-पितासे हमलोग कैसे छूट सकते हैं ? हमलोगोंके शरीरमें भी तो जो कुछ है, सब माता-पिताका ही है । मेरी तो राय यह है कि उनके चरणोंमें जाकर उनसे क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये, इसमें विलम्ब

---

* मनुजीने कहा है—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

( २ । २२७ )

'मनुष्यकी उत्पत्तिके समयमें जो क्लेश माता-पिता सहते हैं, उसका बदला सैकड़ों वर्षोंमें भी सेवादि करके नहीं चुकाया जा सकता ।'

अतएव—

त्रिष्वेतेष्विति कृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥

( २ । २३७ )

'माता-पिता और आचार्य—इन तीनोंकी सेवासे ही पुरुषका सब कृत्य समाप्त हो जाता है यानी उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता । यही साक्षात् परम धर्म है । इसके अतिरिक्त अन्य सब उपधर्म कहे जाते हैं ।'

करना उचित नहीं। माता-पिताकी कोई गलती भी हो तो बड़ोंकी गलती कभी माननी ही नहीं चाहिये।'

इतनेमें भाभी बोल उठी—'बहिनजी ! मुझे तो सास-ससुरसे अलग रहनेमें न तो कोई सुख है और न मेरा मन ही लगता है। समय-समयपर मैं इनसे प्रार्थना भी करती रहती हूँ। पर पता नहीं, विधाताने मुझे उनकी सेवासे क्यों वञ्चित रख छोड़ा है ?' रामलाल बोले—'बहिन ! माता-पिताके बिना बुलाये और बिना उनकी सम्मति लिये जानेमें लज्जा होती है। कहीं वे मेरा अपमान तो नहीं कर देंगे ?' सुशीलाने कहा—'भैया ! उनकी तो सम्मति ही है। वे तो तुम्हारे वियोगमें रोते हैं, उनके पास जानेमें लज्जा किस बातकी ? मेरी समझमें वे तो तुम्हारे जानेसे बहुत प्रसन्न होंगे। और माता-पिताके पास जानेमें अपमानकी कौन-सी बात है ? उनके द्वारा किया हुआ अपमान तो मानसे भी बढ़कर है।'*

सुशीलाकी उपर्युक्त हितभरी बातें सुनकर रामलाल और उसकी पत्नी दोनों सुशीलाके साथ माता-पिताके पास घर आ गये तथा दोनों अपने कृत्यका अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए उनके चरणोंपर गिरकर रोने लगे।

माता-पिताने कहा—'बेटा ! आज बड़े सौभाग्यकी बात है, आज हमारा दिन बहुत ही अच्छा है।' फिर उन्होंने सुशीलासे कहा—'बेटी सुशीला ! तुमने जो आज महत्कार्य किया है, इसको हम आजीवन कभी नहीं भूलेंगे।' सुशीला बोली—'मा ! तुम क्या कह रही हो ? इसका जो कुछ श्रेय है, वह तो तुमको, पिताजीको और भाईजी-भौजाईजीको ही है। मैं तो निमित्तमात्र ही हूँ। मुझमें भी जो कुछ अच्छापन तुम देखती हो, वह सब भी आपलोगोंकी ही कृपा है।'

सुशीलाके इस प्रकारके अभिमानरहित व्यवहारको देखकर सब मुग्ध हो गये। सुशीलाके पास दो मोहन मन्त्र थे; उनसे वह कोई भी क्यों न हो, उसको अपने अनुकूल बना लेती थी। वे मन्त्र ये थे—(१) अपने स्वार्थका त्याग करके निष्काम भावपूर्वक सब प्रकारसे उसके हितकी चेष्टा करना और (२) उसके अवगुणोंको भुलाकर उसके गुणोंका वर्णन करना। इन्हींसे उसने अपने भाईके हृदयको भी पलट दिया।

इसके अनन्तर रामलालने अपने मित्रोंसे प्रेम और विनयपूर्वक प्रार्थना कर दी कि 'मुझको ही कभी अवकाश होगा तो मैं आपके घरपर आकर मिल सकता हूँ, क्योंकि माता-पिताके पास मैं आपका यथोचित सत्कार करनेमें लाचार हूँ।'

सुशीला पिताके घरपर कुछ दिनोंतक रही; परंतु ससुरालमें अपने प्रति होनेवाले अत्याचारको लेकर किसीकी भी कभी किञ्चित् भी निन्दा-चुगली नहीं की। माता-पिता और भाई-भौजाई उसे खाने-पीने, पहननेके लिये अनेक पदार्थ देते, पर उनके आग्रह करनेपर भी वह नहीं लेती। यदि कभी उनके संतोषके लिये यत्किञ्चित् ले भी लेती तो अनासक्तभावसे ही लेती, उसकी उन पदार्थोंके प्रति किञ्चित् भी आसक्ति या लोलुपता नहीं थी। उसका व्यवहार बड़ा ही त्यागमय और प्रशंसनीय था।

तदनन्तर ससुरालसे आग्रहपूर्वक बुलावा आनेपर माताको विनय और प्रेमसे समझाकर वियोगके दुःखको प्रकट करती हुई सुशीला विश्वासी पुरुषके साथ अपने ससुराल चली आयी। सुशीलाको घरमें आये देखकर ससुरालके सभी लोग बड़े आनन्दित हुए।

(१०)

इधर सुशीलाकी लड़की इन्द्रसेनीको द्वादश वर्षकी विवाहके योग्य देखकर उसके सास-ससुरको बड़ी चिन्ता रहा करती थी। अतः एक दिन उन्होंने छोटी बहूसे कहा—'इन्द्रसेनी विवाहके योग्य हो गयी है। तेरे प्रभावके कारण कई लोग अपने साथ सम्बन्ध करना चाहते हैं। तेरी राय किसके साथ सम्बन्ध करनेमें है ?' सुशीलाने अपनी साससे कहा—'इसमें मेरी राय क्या लेनी है ? आप जिसके साथ सम्बन्ध करना उचित समझें, उसीमें हम सबको प्रसन्न रहना चाहिये। मैंने तो आपलोगोंके मुखसे ही यह सुना है कि बालक चाहे गरीब घरका हो; किंतु उसके बल, विद्या, बुद्धि, योग्यता, आचरण, स्वभाव और चरित्र आदि देखने चाहिये। उसके कुटुम्बवालोंके तथा विशेषकर माता-पिताके

* किसी कविने कहा है—

गंभीर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्।
अलब्धशाणोत्कषणान्नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति॥

'जब मनुष्य गुरुजनोंकी कठोर शब्दोंसे युक्त वाणीद्वारा अपमानित किये जाते हैं, तभी महत्त्वको प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं। जैसे कि अच्छी श्रेणीके रत्न भी जबतक शाणपर घिसकर उज्ज्वल नहीं किये जाते, तबतक राजाओंके मुकुटोंमें नहीं जड़े जाते।'

स्वभाव और आचरण अच्छे होने चाहिये।' यह सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए।

इन्द्रसेनीके प्रारब्ध और माता सुशीलाके प्रभावके कारण सुशीलाके इच्छानुकूल ही घर और बालकका स्वतः संयोग लग गया। पण्डित दामोदर शास्त्रीके सुपुत्र शिवकुमारके साथ इन्द्रसेनीका वाग्दान कर दिया गया। पण्डित दामोदरजीकी सुशीलापर बहुत ही श्रद्धा थी, इसलिये उन्होंने अपनी पत्नी-को विवाहके विषयमें सलाह करने सुशीलाके पास भेजा। घरपर आते ही सुशीलाने उनका यथावत् सत्कार किया। तदनन्तर दामोदरजीकी पत्नीने कहा—'आपके साथ सम्बन्ध होकर विवाह आदर्श होना चाहिये। आपके घरमें तो कुरीतियाँ और फिजूलखर्च होगा ही नहीं, हमलोग भी अपने सुधारके लिये आपकी रायके अनुसार ही करना चाहते हैं।' इस प्रकार विशेष आग्रह और श्रद्धापूर्वक पूछनेपर सुशीलाने कहा—'बारूद, खेल-तमाशे, सिनेमा-थियेटर, उछाल, अधिक रोशनी आदिमें व्यर्थ खर्च नहीं करना चाहिये। विवाहमें गाली-गलौज, बुरे गीत गाना, चौपड़-ताश खेलना, बहुत-से बाजे बजाना आदि भी नहीं करना चाहिये। विवाह तो अच्छे-अच्छे विद्वानोंको बुलाकर विधि-विधानसे भलीभाँति होना चाहिये, इसमें अधिक भीड़-भाड़ नहीं होनी चाहिये। हमारी ओरसे क्या करना चाहिये सो कृपया आप बतलाइये।'

पण्डित दामोदरजीकी पत्नी बोली—'हमलोग आपको क्या आदेश दें। हमलोग तो आपकी ही शिक्षाके अनुसार चलना चाहते हैं। आपने इस विषयमें कैसा विचार किया है, यह सुननेके लिये हमलोग उत्सुक हैं। यदि उचित समझें तो आप बतलानेकी कृपा करें।'

इसपर सुशीलाने कहा—'हँसी-मजाक, नाच तथा बुरे गीत तो हमारे यहाँ पहलेसे ही बंद हैं। भाँग, तम्बाकू, सुल्फा, गाँजा आदि मादक वस्तु, सोडा-बर्फ, लेमोनेड देना, होटलमें भोजन कराना, पार्टी देना और सेंट आदिसे सत्कार करना शास्त्रविरुद्ध तो है ही, बल्कि सत्कारके नामपर उनका अपमान करना है। शास्त्रके अनुसार हल्दहात आदि करनेके बाद देवताओंकी विधिवत् पूजा कराकर अच्छे-अच्छे विद्वानों-की सम्मतिके अनुसार कन्यादान करनेका विचार है। आप लोगोंका असली सत्कार तो श्रद्धा और प्रेमके व्यवहारसे होता है; उसकी तो हमलोगोंमें कमी है, भोजन तथा पान-सुपारी, लौंग-इलायचीका प्रबन्ध साधारण तौरपर किया गया है। दहेज-धन देनेके लिये तो हमारे पास है ही क्या, हम तो एक अबोध बालिकाको आपकी सेवामें अर्पण करके अपनेको पवित्र करना चाहते हैं। आप-जैसे सरल और त्यागी मनुष्योंके साथ सम्बन्ध हमारे बड़े ही भाग्यसे हुआ है। आपके व्यवहारको देखकर हमलोग सब मुग्ध हो रहे हैं।'

इसके अनन्तर समयपर दोनों ओरसे श्रद्धा, विनय और प्रेमका व्यवहार होते हुए उपर्युक्त पद्धतिके अनुसार बहुत ही प्रशंसनीय, सात्त्विक और आदर्श विवाह सम्पन्न हुआ तथा परस्पर नमस्कार करनेके बाद बरातको बिदा किया गया।

सोमदत्त, रामदत्त और मोहनलाल—तीनों भाई सुशीलाके चलाये हुए व्यापार-कार्यको निजमें ही देखा करते और परस्पर सबका बहुत ही अच्छा प्रेममय व्यवहार था। घरमें स्त्रियोंका भी व्यवहार सुशीलाके सम्पर्कसे बहुत ही सुन्दर हो गया था। इस प्रकार कुछ काल बीतनेके बाद सुशीलाका लड़का इन्द्रसेन जब सोलह वर्षका हो गया, तब उसका विवाह भी पण्डित रघुनाथ आचार्यकी पुत्री गायत्रीसे कर दिया गया। वह विवाह भी पूर्वकी भाँति ही बहुत सात्त्विक, आदर्श और प्रशंसनीय हुआ। उसमें भी नाच-गीत, कुरीतियाँ और फिजूलखर्ची बिल्कुल नहीं की गयी तथा इनकी ओरसे त्यागका व्यवहार रहा। पर श्रीरघुनाथ आचार्यका विशेष आग्रह होनेके कारण उनके सन्तोषके लिये नाममात्रका दहेज लेना पड़ा।

इस प्रकार लड़की और लड़केका विवाह होनेपर सब घरवाले निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक अपने घरमें निवास करने लगे तथा परस्पर बड़े ही त्याग और प्रेमका व्यवहार करने लगे।

( ११ )

कुछ दिनों बाद पण्डित देवदत्तजीके श्वास-रोगके कारण शरीर दुर्बल हो जानेसे ज्वर हो गया। अनेक आयुर्वैदिक दवा की, किंतु कोई भी लागू न पड़ी। सुशीलाकी रात-दिन विनय और प्रेमपूर्वक की हुई सेवासे देवदत्तजी मुग्ध हो गये और बोले—'बेटी! तुम सर्वदा निर्दोष थी और मैंने तुमको घरसे निकलवा दिया था, वह दुःख मेरे हृदयमें शूलकी तरह चुभता रहता है।' सुशीलाने ननद रोहिणीके द्वारा कहा—'ससुरजी! आपकी तो कोई गल्ती है ही नहीं। वह सब घटना तो धोखेसे हो गयी। उसका आपको कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये। मैं जो आपसे बहुत दिनोंतक अलग रही, इसे मैं अपना ही दुर्भाग्य मानती हूँ। अब इस

विषयमें आप अपनेको हेतु मानकर दुःख करेंगे तो उससे उल्टा मेरे चित्तपर विचार होगा।' यह सुनकर पण्डितजीने कहा—'बेटी! तू विचार मत कर। तेरी बात सुनकर अब मेरे चित्तमें कोई विचार नहीं रहा।'

इसके बाद पण्डितजीकी अवस्था और भी दब गयी। यह देखकर घरवालोंने स्थानको बुहार-झाड़कर साफ किया और फिर पवित्र जलसे धोकर उसपर गोबर तथा गङ्गाजलका चौका लगाया एवं उसपर तिल और सरसों बिखेरकर भगवान्का नाम लिखा। फिर उसपर पवित्र बालूकी शय्या बनाकर गङ्गाजीकी रेणुका छिड़क दी और उसपर रामनाम लिखकर मन्त्रोंद्वारा गङ्गाजलसे उसका मार्जन किया। उस बालूपर दर्भ डालकर हाथसे बना हुआ शुद्ध सफेद वस्त्र बिछा दिया। तदनन्तर पण्डितजीका संकेत पाकर सोमदत्तने उनको पवित्र जलसे स्नान कराया और नवीन शुद्ध उत्तरीय तथा अधोवस्त्र पहनाकर उनका यज्ञोपवीत बदल दिया। इसके बाद उनको उस बालुकामयी शय्यापर सुला दिया और हाथसे बनी हुई एक नवीन, शुद्ध, सफेद चद्दर ओढ़ा दी। उनके पास एक नूतन तुलसीवृक्षका गमला रख दिया। गलेमें तुलसीकी माला पहना दी, मस्तकपर चन्दनसे तिलक कर दिया। मस्तकके नीचे बहुत कोमल और हल्की-सी एक गीताकी पुस्तक रख दी। पण्डितजी श्रीविष्णुरूपके उपासक थे, अतः एक छोटी-सी शालग्रामजीकी मूर्ति उनके वक्षःस्थलपर रख दी। फिर पत्र-पुष्प, धूप-दीप आदिसे भगवान्की पूजा की गयी और आरती उतारी गयी। इसके बाद सोमदत्तने पण्डितजीको तुलसी और गङ्गाजल पिलाकर गीताके आठवें अध्यायका अर्थसहित पाठ सुनाया। तत्पश्चात् सब मिलकर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक मुग्ध होकर एक ताल और एक स्वरसे भगवान्के नामोंका कीर्तन करने लगे। पण्डितजीके सामने भगवान् श्रीविष्णुका सुन्दर चित्र दीवालपर टँगा हुआ था ही, उसे देखते हुए भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभावको याद करते हुए तथा भगवान्के नामोंका कीर्तन सुनते हुए पण्डितजी भगवान्के परमधाम सिधार गये।

इस कहानीसे, विशेषकर माता-बहिनोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि वे सुशीलाको आदर्श मानकर उसका अनुकरण करें अर्थात् अपने साथ बुराई करनेवालेके साथ भी भलाई करें; बालकोंके साथ वात्सल्यभाव, समानवालोंके साथ मैत्री-भाव और बड़ोंके प्रति श्रद्धा-भक्ति और विनयभावसे उनकी सेवा करें; निःस्वार्थभावसे उत्तम कार्य करके मान-बड़ाईसे रहित होकर उसका श्रेय दूसरोंको ही देनेके लिये सत्यकी रक्षा करते हुए चेष्टा करें; घोर आपत्ति पड़नेपर भी काम, क्रोध, लोभ, लज्जा, भय आदिके वशमें होकर धैर्य, धर्म, ईश्वरभक्ति तथा जान-बूझकर प्राणोंके त्यागका कभी विचार ही न करें; सास-ससुर, माता-पिता, पति आदि बड़ोंकी तन, मन, धनके द्वारा कर्तव्य समझकर निःस्वार्थभावसे विनय-प्रेमपूर्वक सेवा करें; बालकोंको अपने आचरण और वाणीद्वारा अच्छी शिक्षा दें; बालकोंके विवाहमें कुरीतियाँ और फिजूल-खर्चीका सर्वथा त्याग करें; चोर, बदमाश, ठग, नीच और धूर्तोंसे बचनेके लिये बुद्धि-विवेकपूर्वक कुशलतासे काम लें; बीमारी, मृत्यु और आपत्तिसे ग्रस्त मनुष्योंके हितके लिये उनकी निःस्वार्थ भावसे सेवा करें; विद्या, बुद्धि, बल, तेज और शिल्पज्ञानकी वृद्धिके लिये तत्परतासे यथोचित चेष्टा करें; सबको अपने अनुकूल बनानेके लिये उनके अवगुणोंकी ओर खयाल न करके उनके सच्चे गुणोंका वर्णन करते हुए उनके परमहितकी चेष्टा करें एवं क्षमा, दया, शान्ति, समता, संतोष, सरलता, श्रद्धा, प्रेम आदि गुणोंको तथा सत्सङ्ग, स्वाध्याय, कथा, कीर्तन, तीर्थ, सेवा, तप, दान आदि सदाचारोंको अमृतके समान समझकर कर्तव्य और निष्कामभावसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक धारण करें।

## अमृत-कण

'जीवनका कोई भरोसा नहीं, कमलदलपर जैसे जल स्थिर नहीं रह सकता, वैसे ही यह जीवन है। इसमें अल्पकालके लिये जो सत्पुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होता है, वही संसाररूपी समुद्रको तरनेके लिये नौकाका काम देता है।'

'धैर्य जिसका पिता है, क्षमा माता है, शान्ति सदा पत्नी है, सत्य पुत्र है, दया बहिन है, मन-संयम भ्राता है, पृथ्वी शय्या है, दिशा वस्त्र हैं, ज्ञानामृत भोजन है; इतने जिसके कुटुम्बी हैं, बताइये, ऐसे योगीको किसका भय है।' (संकलित)

यह तो उषा आयी है, अंशुमाली अभी भी क्षितिजके उस पार ही हैं। किंतु कमलनयन श्रीकृष्णचन्द्र आज इसी समय अपने-आप जग उठे हैं, जगकर जननीसे अपने मनकी एक बात बता रहे हैं—'री मैया! देख, आज यहाँ नहीं, आज तो एक परम सुन्दर वनमें जाकर वहाँ ही भोजन करनेकी मेरी रुचि हुई है।'—

**कस्मिन्नप्यहनि अनुदित एवाहस्करे पुष्करेक्षणो जननीमुवाच । मातरद्य निरवद्यविपिनभोजने भो जनेश्वरि ! विहितलालसोऽस्मि ।**

( श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः )

अपने नीलमणिका ऐसा प्रस्ताव जननी सहजमें स्वीकार कर लें, यह भी कभी सम्भव है? जननीको तो अपने पुत्रकी यह अभिलाषा नितान्त अनीतिपूर्ण प्रतीत हुई और वे बड़े वेगसे सिर हिलाकर तथा 'नहीं-नहीं, यह तो होनेकी ही नहीं।'—मुखसे भी स्पष्ट कहकर अपना निर्णय सुना देती हैं—

**इति तनयोदितमनयोदितमवगम्य व्रजराजवधूर्जवधूयमानवदनं न न न नेति यदा निजगाद ।**

( श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः )

किंतु श्रीकृष्णचन्द्रने भी हठ पकड़ लेनेके अनन्तर उसे फिर छोड़ देना सीखा जो नहीं है। अनुनय-विनय करते हुए अपने करपल्लवोंसे बार-बार जननीका मुख आच्छादन करते हुए उनकी सम्मति ले लेनेके लिये वे तुले बैठे हैं। और जब मैया अपने निश्चयपर अडिग बनी रहती हैं, तब श्रीकृष्णचन्द्र आज एक नयी युक्तिका आश्रय ग्रहण करते हैं; वे मैयाको अपनी शपथ दे देते हैं। बस, जननीको मौन कर देनेके लिये यह अमोघ उपाय है। अनुत्साहपूरित चित्तसे ही हो, पर अब तो जननीको नीलमणिका अनुमोदन करना ही पड़ता है—

**शपथेन मुहुरनुनाथ्य तदनुमोदनं कारयामास ।**

( श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः )

वन-भोजनकी यह योजना कल वत्सचारण कर लौटते समय ही बन चुकी थी; सखामण्डलमें यह स्थिर हो चुका था कि कल प्रत्येक शिशु अपने घरसे भोज्य-द्रव्य साथ ले आये और सब मिलकर, साथ बैठकर, परस्पर बाँटकर प्रातः कलेवा भी किसी सुरम्यवनमें ही करें। प्रस्ताव श्रीकृष्णचन्द्रका ही था और फिर अविरोध समर्थन सखावर्गका हो, इसमें तो कहना ही क्या है। इसीलिये श्रीकृष्णचन्द्र आज जननीके शत-शत अवरोध-अनुरोधपर भी अविचल रहे और जननीको ही अपना निश्चय बदलना पड़ा। जो हो, व्रजरानी सर्वप्रथम अतिशय शीघ्रतासे अपने चञ्चल पुत्रको शृङ्गार धारण कराने लगती हैं और उधर रोहिणी मैया सुस्वादु सुमिष्ट विविध खाद्यसामग्रीसे छींकोंको पूर्ण करनेमें जुट पड़ती हैं।

वेशविन्यास पूर्ण हुआ और श्रीकृष्णचन्द्र प्राङ्गणमें आकर खड़े हो गये। मैया दौड़कर कुछ मोदक-खण्ड एवं किञ्चित् नवनीत ले आयीं तथा अपने नीलसुन्दरके मुखमें डालने लग गयीं। नीलसुन्दर भी जानते हैं—यदि उन्होंने जननीके इस उपहारको अस्वीकार किया तो फिर वन-भोजनकी सारी योजना धरी रह जायगी। अतः वे खड़े-खड़े ही जननीकी यह भेंट लेने लगे। अवश्य ही अल्प-से-अल्प समयमें ही यह कार्य सम्पन्न हुआ और तब गूँज उठा श्रीकृष्णचन्द्रका शृङ्गनाद। आज उनके सखाओंकी तो अभी नींद भी नहीं टूटी है। यह पूर्ण परिचित शृङ्गध्वनि ही कर्णरन्ध्रोंमें प्रविष्ट होकर उनको—व्रजपुरके समस्त शिशुओंको जगाती है। वे हड़बड़ाकर उठ बैठे—'अरे! आज तो कन्नू मैयाकी ही विजय हुई, ऐसा तो कभी नहीं हुआ था,

हम सभी जाते थे तब कन्हैया जागता था, जननीके शत-शत प्रयाससे, हमारे तुमुल कोलाहलसे उसके नेत्र खुलते थे और आज तो वह वनकी ओर चल पड़ा !' शिशु अपने गोवत्सोंको हाँक देनेके लिये दौड़े गोष्ठकी ओर । श्रीकृष्णचन्द्रके गोवत्स तो आज अपने पालकसे भी बहुत पूर्व मानो जाग उठे हैं, वे मूक गोशावक जैसे आजकी व्यवस्थासे पूर्ण परिचित हों, इस शृङ्गनादकी ही प्रतीक्षा कर रहे हों—इस प्रकार ध्वनि होते ही नन्दभवनके तोरणद्वारपर कूदते हुए वे एकत्र हो जाते हैं । वनपथकी ओर अग्रसर होनेका चिरपरिचित सङ्केत उन्हें प्राप्त हो जाता है और वे उधर ही चल पड़ते हैं । आगे-आगे अपार गोवत्सश्रेणी और पीछे उनके पालक व्रजेन्द्रनन्दन गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र वनकी ओर चले जा रहे हैं—

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात्
प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।
प्रबोधयञ्छृङ्गरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥
(श्रीमद्भा० १० । १२ । १)

श्रीकृष्णचन्द्रका त्रिभुवनमोहन आजका वह वत्सपाल-वेश देखते ही बनता है—

वेणुं वामे करकिशलये दक्षिणे चारुयष्टिं
कक्षे वेत्रं दलविरचितं शृङ्गमत्यद्भुतं च ।
बर्होत्तंसं चिकुरनिकरे वल्गुकण्ठोपकण्ठे
गुञ्जाहारं कुवलययुगं कर्णयोश्चारु बिभ्रत् ॥
( श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः )

'वाम करकिशलय वेणुसे सुशोभित है, दक्षिण करमें सुन्दर यष्टि ( छड़ी ) है । कक्षमें बेंत एवं पत्रमण्डित अद्भुत शृङ्ग दबाये हुए हैं । अलकावली मोरमुकुटसे मण्डित है । सुन्दर कण्ठदेश गुञ्जाहारसे राजित हो रहा है । कर्णयुगल युग्मकुवलयसे विभूषित हैं ।'

जननीके अगणित रत्नहार, रत्नाभूषणोंमेंसे आज किसीको श्रीअङ्गपर स्थान नहीं मिला । आज तो श्रीकृष्णचन्द्र वनमें ही रहेंगे । जननीने भी अचिन्त्य प्रेरणावश तदनुरूप ही शृङ्गार धराये हैं । फिर अवकाश ही कहाँ था कि जननी अपने नीलसुन्दरको समस्त शृङ्गार धारण करा सकें । एक क्षणका विलम्ब भी श्रीकृष्णचन्द्रको असह्य जो हो गया था । मैयाका मन भी रह-रहकर इस ओर आकर्षित हो रहा था कि अधिक-से-अधिक छींकोंमें अधिक-से-अधिक भोजनद्रव्य श्रीरोहिणी एवं परिचारिकाएँ भर पायीं कि नहीं । कहीं वनमें सखाओंको वितरण करते-करते स्वयं नीलमणिके लिये भोज्य-वस्तुओंकी त्रुटि न पड़ जाय—मैयाको तो यह चिन्ता लगी थी । शृङ्गारके बिना ही उनके परम सुन्दर साँवरे पुत्रसे सौन्दर्यकी किरणें झरती रहती हैं, रत्नाभरण आज न सही ! बस, अधिक-से-अधिक खाद्य सामग्री वनमें भेजी जा सके, मैयाके लिये यही प्रमुख प्रश्न था । और इसीलिये आज श्रीकृष्णचन्द्रका छींका वहन करनेवाले गोपसेवकोंकी संख्या भी मैयाने बढ़ायी है, बहुत अधिक बढ़ायी है—शृङ्गार-सामग्रीकी नहीं ।

अस्तु, राजसदनकी सीमा पार करते-न-करते सखाओंका समुदाय भी एकत्र होने लगता है । देखते-देखते सहस्र-सहस्र गोपशिशु अपने असंख्य गोवत्सोंको साथ लिये, उन्हें आगे हाँकते हुए आ पहुँचते हैं; श्रीकृष्णचन्द्रके मण्डलमें सम्मिलित हो जाते हैं । प्रत्येकने अपने घरसे छींकोंमें भोजनद्रव्य ले लिये हैं । सभी सुन्दर वेत्र, शृङ्ग एवं वेणुसे विभूषित होकर ही आये हैं । इन शिशुओंके पारस्परिक प्रेमकी, श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति असीम अनुरागकी तुलना ही कहाँ सम्भव है । फिर आजकी मनोवाञ्छित योजना सफल होते देखकर तो इनके सुखका पार नहीं रहा है । आनन्दसिन्धुकी चञ्चल लहरियोंसे स्नात हुए, उनपर नाचते-से हुए ये चले जा रहे हैं अपने प्राणाराम सखा श्रीकृष्णचन्द्रके साथ !

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः
स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः।
स्वान् स्वान् सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्
वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥
( श्रीमद्भा० १० । १२ । २ )

अपने बछड़े उन सबोंने श्रीकृष्णचन्द्रके असंख्य गोवत्सोंमें मिला दिये—

कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान्।
( श्रीमद्भा० १० । १२ । ३ )

अपने बछरन लै लै आये। कान्ह के बछरन आनि मिलाये ॥

और फिर स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलकर ऐसे चले जा रहे हैं, जैसे असंख्य मन्मथकी मण्डली श्रीकृष्णचन्द्र-को आवृत किये जा रही हो—

नंद-सुवन सौं मिलि कै चले। लागत सबै मैन से भले ॥

उनके मध्यमें श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा !—उसका तो क्या कहना है !—

तिन मधि मोहन अति सुखदाइक।
नग जराइ मधि ज्यौं मधिनाइक ॥

किंतु सबको ही आज एक बात अतिशय खल रही है। आज दाऊ भैया साथ जो नहीं चल रहे हैं। उनके अभावमें तो वन-भोजनका रस ही आधा हो जायगा। किसी कारणसे वे तो घरपर ही रह गये—

केनापि हेतुना गृहस्थितिः कुतूहलिनि हलिनि······।
( श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः ).

अरे नहीं, उनका आज जन्मनक्षत्र है, उसकी शान्ति, अभिषेक आदिके लिये रोहिणी मैयाने उन्हें बलपूर्वक रोक लिया—

बलदेवस्तु मात्रा जन्मर्क्षशान्तिकस्नानाद्यर्थं गृह एव बलाद्रक्षितः।
( सारार्थदर्शिनी )

इतना अवश्य है, चलते समय दाऊ मैयाने श्रीकृष्णचन्द्रके समीप चुपचाप यह संवाद भेज दिया है—

हन्त भोः ! कृष्ण ! त्वया सह क्रीडातृष्णगप्यहं विरुद्धविधिना निरुद्ध एवास्मि।×××भवता या लीला भावयितुं भाविता सावश्यं भावयितव्या।
( श्रीगोपालचम्पूः )

'भैया रे श्रीकृष्ण ! तुम्हारे साथ क्रीड़ाकी लालसा रहनेपर भी दैव मेरे विरुद्ध है और मैं रोक ही लिया गया। किंतु जो लीला तुमने करनेको सोच रक्खी है, उसे अवश्य सम्पादित करना।'

बलरामकी यह सम्मति ही उनके अभावको किसी अंशमें पूर्ण कर दे रही है। और फिर तो अचिन्त्य-लीला महाशक्तिने डोरी खींच ली। दाऊ भैया सबके स्मृतिपथसे बाहर चले आये। दूसरे ही क्षण नवीन उत्साहका द्वार खुला। अरविन्दनयन श्रीकृष्णचन्द्रके दृगञ्चल चञ्चल हो उठे। उल्लासकी स्रोतस्विनी लहरा उठी और गोपशिशु उसीमें वह चले। आगे मनोरम वनश्रेणी है। कलिन्दनन्दिनीका मञ्जुल प्रवाह है। श्रीकृष्णचन्द्रका नेतृत्व है। इससे अधिक उद्दीपन और क्या होगा ? गोपशिशु वत्सचारण करते हुए ही बाल्यकौतुकमें संलग्न हो जाते हैं। चलते-चलते जहाँ कहीं भी रुक जाते हैं और वहीं एक-से-एक सुन्दर बाल्यविहार होने लगता है—

चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह।
( श्रीमद्भा० १० । १२ । ३ )

पहली क्रीड़ा हुई नीलसुन्दरके श्यामल श्रीअङ्गोंको वन्यसामग्रीसे अलङ्कृत करनेकी, स्वयं भी आभूषित होने-की। सबकी माताओंने यथासाध्य पर्याप्त सजाकर ही पुत्रोंको वनमें भेजा है। श्रीकृष्णचन्द्रने रत्नहार, मणि-भूषण नहीं धारण किये तो क्या ? शिशुओंकी माताओंने तो आज भी उन्हें—बालकोंकी रुचि ऐसे श्रृङ्गारमें न रहनेपर भी—वैसे ही सजाया है। सदाकी भाँति गोपशिशु अङ्गद, वलय, किङ्किणीजाल, कर्णकुण्डल, मञ्जीर और विविध मणिमय भूषणोंसे सुसज्जित हैं—

**केयूरे वलयानि किङ्किणिघटा हारावली कुण्डले**
**मञ्जीरौ मणिवृन्दवन्धलतिका यद्यप्यमीषां वसु।**
**( श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः )**

गुञ्जा, काच, मुक्ता, स्वर्णमणिनिर्मित आभरणोंसे पुत्रोंकी वेशरचनामें आभीर-सुन्दरियोंने कलाकी इति कर दी है; इतने अल्प समयमें व्रजेश्वरीने भी पुष्पोंसे ही अपने नीलमणिका परम मनोहर शृङ्गार करके ही भेजा है। पर इससे क्या हुआ, शिशुओंके मनके अनुरूप न तो श्रीकृष्णचन्द्र ही सजे और न वे सब ही। व्रजरानी, उनकी माताएँ कहाँ पायेंगी वनस्थलीकी शृङ्गारसामग्री ? भूषणोपयोगी ये छोटे-बड़े वनफल, द्रुमवल्लरियोंके रङ्ग-बिरङ्गे नवपल्लव, मनोहारी पुष्पगुच्छ, विविधवर्ण, चित्र-विचित्र कुसुमोंकी राशि, अभी-अभी झड़े हुए झलमलाते मयूरपुच्छ एवं गैरिक आदि भाँति-भाँतिके वन्यधातु—ये वस्तुएँ व्रजराजमहिषीको, गोप-सुन्दरियोंको कहाँ मिलेंगी ! और मिलें भी तो इनसे विभूषित करनेकी कल्पना ही उनमें कहाँ सम्भव है ? किंतु शिशुओंके मनभावते शृङ्गारद्रव्य तो ये ही हैं। उन्हें तो अपने प्राणप्रतिम सखा कन्हैयाको; स्वयं अपने-आपको इन्हींसे अलङ्कृत करना है। तभी तो समुचित वेशविन्यास होगा ! अन्यथा तो इन आभूषणोंका भार वहन करना मात्र है ! अतः सबसे पहले आज वेशरचनाका ही कार्य हुआ। फलसे, नव-किशलयसे, कुसुम-स्तबकसे, सुमनसे, शिखिपिच्छ एवं वन्यधातुओंसे प्रथम उन सबने मिलकर नीलसुन्दरके अङ्गोंको अलङ्कृत किया और फिर पारस्परिक सहयोग-द्वारा तथा श्रीकृष्णचन्द्रके करपद्मोंसे आहृत वन्य-उपहारों-को ले-लेकर वे सब-के-सब स्वयं भी विभूषित हुए—

**फलप्रवालस्तवकसुमनःपिच्छधातुभिः ।**
**काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥**
**(श्रीमद्भा० १०।१२।४)**

इसके अनन्तर उनकी यथेच्छ क्रीड़ा आरम्भ हुई। एकने चुपचाप किसीका छींका कंधेसे उतार लिया, अथवा बगलसे बेंत खींच ली और छिपा दिया। किसी सहगामी दर्शकका सङ्केत पानेपर उसे अपनी वस्तुके अपहृत होनेका भान हुआ और वह ढूँढ़ने चला। वस्तु जाती कहाँ ? अपहरण करनेवालेका ठीक-ठीक अनुमान उसे हो गया और वह दौड़ा उससे अपनी वस्तु छीनने। किंतु समीप पहुँचनेसे पूर्व उसने तो अपहृत वस्तु दूर फेंक दी। शिशु अपनी वस्तु उठा लेनेके लिये लपका पर ले नहीं सका। दूसरे शिशुने उसे उठाकर और भी आगे निक्षिप्त कर दिया। वहाँ पहुँचनेपर तीसरेने और आगे फेंक दिया। वस्तु न पाकर, अपनी हारका अनुभव कर श्रान्त शिशुके नेत्र भरने लगे। फिर तो किसी वयस्क शिशुने अथवा स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रने ही हँसते हुए उसकी वस्तु लाकर उसके हाथोंमें दे दी और उसे अङ्कमें भर लिया। उसके तप्त अश्रु एक अनिर्वचनीय सुखके परमशीतल विन्दुमें परिणत हो गये !

कदाचित् वृन्दाकाननकी सुन्दर शोभा निहारने श्रीकृष्णचन्द्र किञ्चित् दूर चले गये, फिर तो होड़ मची—दौड़कर कौन सबसे पहले श्रीकृष्णचन्द्रको स्पर्श करता है ? 'यह लो मैं पहुँचा' कहते हुए असंख्य शिशु एक साथ दौड़े श्रीकृष्णचन्द्रको स्पर्श करनेके लिये; और उन्हें छूकर, अपने भुजपाशमें बाँधकर सुखसिन्धुमें निमग्न हो गये।

एक समुदायकी लालसा हुई—श्रीकृष्णचन्द्रकी भाँति ही वह वंशी बजाये। उसने अपनी वंशीमें स्वर भरना आरम्भ किया। फिर तो उसका अनुकरण दूसरे-ने भी किया ही। विभिन्न स्वरनादसे कानन गूँज उठा। और तब श्रीकृष्णचन्द्रने अपने अधरोंपर वंशीको धारण किया। करकिशलय चञ्चल हुए, छिद्रोंपर अङ्गुलियाँ नाचने लगीं। फिर तो अगणित शिशुओंका सम्मिलित वेणुनाद श्रीकृष्णचन्द्रके वंशीरवमें ही सहसा

समा-सा गया। साथ ही शिशुओंको अनुभव हुआ—'कन्नू भैयाकी स्वरलहरीसे जिस मधुकी वर्षा होती है, वह तो अप्रतिम है, हम सबोंके वंशीनादमें सचमुच वह मिला नहीं, वह तो उससे सर्वथा पृथक् रह रहा है, उस मधुप्रवाहमें हमारा नाद प्रस्तर-कण-सा खर-खर कर रहा है। उसमें एकरस होकर मिल सकना तो दूर रहा, हमारा वंशीरव तो उलटे उसकी मधुरिमाको रुद्ध कर दे रहा है।' एक साथ ही शिशुओंने बजाना स्थगित कर दिया और फिर सबने निश्चय कर लिया—'देखो, जब कन्नूकी वंशी बजे, तब हममेंसे कोई भी उस समय उसका अनुकरण न करे। अन्यथा हम सभी इस परम सुखके पूर्ण उपभोगसे वञ्चित रह जायँगे। और बातोंमें कन्नूको हरायें, वह तो हारेगा ही, पर वंशीवादनमें उसकी होड़ करने न जायँ!'

यही परिणाम शृङ्गध्वनिका भी निकला। श्रीकृष्णचन्द्रके शृङ्गसे निर्गत अत्यन्त गम्भीर नादकी समता गोपशिशु न कर सके। तथा पूर्ववत् निर्णय इस सम्बन्धमें भी हुआ। और वेणु, शृङ्ग तो प्रतिदिन ही बजते हैं, बजेंगे ही। आज तो और ही क्रीड़ा हो!

अस्तु, एक दलको अन्य क्रीड़ा सूझी। मधुमत्त भ्रमर गुन-गुन करते उड़ रहे हैं। शिशुओंके इस दलने उनकी ओर देखा, उनकी ध्वनि सुनी और फिर उस 'गुन-गुन'में ही अपना कण्ठ-स्वर मिलाना आरम्भ किया। इतनेमें कोकिलका 'कुहू-कुहू' रव सुन पड़ा और कुछ शिशु कोकिलकण्ठका ही अनुकरण करने लगे।

कतिपय शिशु अतिशय वेगसे दौड़ने लगे। आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी सचल छाया देखकर उन्हें नया ही कौतुक हाथ लगा। वे उस छायाका ही अनुसरण करते हुए छायापर अपने चरण रखते हुए चलनेके प्रयासमें प्रबल वेगसे दौड़ चले। आगे सरोवर आ जानेसे उनका मार्ग रुद्ध हो गया। अन्यथा वे न जाने कितनी दूरतक चले जाते। जो हो, सरोवरपर जानेसे एक और सुन्दर क्रीड़ासामग्री मिली। वहाँ हंसोंकी मृदुगति देखकर उनके आनन्दका पार नहीं। वहीं इस मरालकुलकी शोभा निहारनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र भी दौड़े आये। उन्हें अपने समीप आये देखकर उन हंसोंकी विचित्र दशा हुई। वे ग्रीवा उठाकर मृदु मन्दगतिसे अतिशय सुमधुर कूजन करते हुए उनकी ओर ही चल पड़े। फिर तो श्रीकृष्णचन्द्रके उन गोपसखाओंकी चेष्टा भी देखने ही योग्य हुई। पङ्क्तिबद्ध होकर वे बालक ठीक हंसोंकी भाँति ही चलने लगे। श्रीकृष्णचन्द्रका उन्मुक्त हास्य उन्हें उत्तरोत्तर प्रोत्साहित करता गया और हंसकी गतिसे मृदुपादविन्यासकी क्रीड़ा न जाने कितनी देर चलती रही।

किञ्चित् अल्पवयस्क शिशुओंका ध्यान शान्त स्थिर बैठे बक-समूहोंकी ओर गया। वे उनकी मुद्राका ही अनुकरण करने लगे। उनसे कुछ दूर वहीं सरोवर-तटपर वे शिशु भी वैसे ही ध्यानस्थित-से शान्त बैठ गये। उनका यह सुन्दर अभिनय देखकर श्रीकृष्णचन्द्रके उल्लासकी सीमा नहीं रही।

वहीं देखते-देखते दल-के-दल मयूर एकत्र होने लगे। उन्हें भी श्रीकृष्णचन्द्रकी अङ्गगन्ध मिली और वे अपनी घ्राणशक्तिसे इस दिव्यातिदिव्य सौरभका सन्धान पाकर सघन वनसे वहाँ चले आये जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र विराजित हैं। वे सचमुच आये ही हैं श्रीकृष्णचन्द्रका अभिनन्दन करने; क्योंकि उन सबोंने पुच्छका विस्तार किया और लगे नृत्य करने। उनके इस नृत्यसे श्रीकृष्णचन्द्रका मन भी नाच उठता है। केवल मन ही नहीं, शरीर भी। वास्तवमें वे उन नृत्यपरायण मयूरोंके पाद-विन्यासपर, उनके तालबन्धपर उनकी-सी भाव-भङ्गिमाका प्रकाश करते हुए नृत्य करने लग जाते हैं। गोपशिशुओंकी तो क्या चर्चा, श्रीकृष्णचन्द्रका यह नृत्य अतिशय चञ्चल कपिदलको भी मुग्ध कर देता है। द्रुम-

शाखाओंपर अवस्थित, अतिशय शान्ति धारण किये इस कपिसमाजकी भावसमाधि देखने ही योग्य है !

किंतु आखिर तो वह कपिकी जाति ठहरी । एकने भूल कर दी । दर्शनलोभसे ही वह कूदकर निम्नतम शाखापर आ बैठा । और एकके नीचे उतर आनेपर दूसरेके द्वारा अनुकरण अनिवार्य है ही । कपिस्वभावकी शोभा भी इसीमें है । अस्तु, देखते-ही-देखते शत-शत कपिसमूह वृक्षसे नीचे आकर नृत्यपरायण श्रीकृष्णचन्द्रको, मयूर-कुलको आवृत कर लेते हैं । श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान इस ओर नहीं जाता, वे तो नृत्यमें तन्मय हो रहे हैं । किंतु मयूर भयभीत हो उठे । अपने पुच्छका सङ्कोचकर नृत्यका विरामकर, सब-के-सब तरुशाखाओंपर जा चढ़े । अब तो गोपशिशुओंके रोषका पार नहीं । इस दुष्ट कपिदलने श्रीकृष्णचन्द्रका नृत्य जो बिगाड़ दिया । शिशुओंमें प्रतिशोध लेनेकी भावना जाग्रत् हुई । वे उनकी लम्बी नीचे लटकती पूँछोंको पकड़-पकड़कर खींचने लगे । और जब वे कपि ऊपरकी शाखाओंपर जा चढ़े तो शिशु भी उनके साथ ही वृक्षोंपर चढ़ गये । वे सब वानर-स्वभाववश मुख विकृत करके जब इनकी ओर घुड़कने लगे, तब ये सब भी ठीक वैसे ही अपना मुँह फाड़कर, दाँत निकालकर, उलटा उन्हें ही धमकाकर उन्हें पुनः पकड़ लेनेका प्रयास करने लगे । भयभीत कपिसमाज जब इस वृक्षसे उस वृक्षपर कूदकर भागने लगा, तब ये निर्भीक गोपशिशु भी एकसे दूसरे वृक्षपर कूदने लगे । उन्हें बहुत दूर हटाकर ही इन सबोंने विश्राम लिया ।

एक ओर कतिपय शिशुओंका अभिनय और भी मनोरम है । आयु छोटी होनेके कारण यह मण्डल न तो वृक्षपर ही चढ़ सका और न अन्य क्रीड़ाओंमें ही इसे सफलता मिली । किंतु इस बार इन्होंने भी बाजी मार ली । सरोवरके समीप उछलते हुए भेकों (मेढकों) की ओर इनकी दृष्टि गयी और ये भी पृथ्वीपर हाथ टेककर वैसे ही फुदकने लगे । ठीक उनकी भाँति ही फुदककर क्षुद्र जल-धाराओंको पार करने लगे । इनकी यह चेष्टा देखकर श्रीकृष्णचन्द्रके सहित अन्य समस्त गोपशिशु हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये ।

कुछ गोपबालकोंका ध्यान अपने प्रतिबिम्बकी ओर गया । प्रातःकालकी इतनी लम्बी छाया देखकर वे उस प्रतिच्छायासे ही खेलने लगे । बालकोंने अपने हाथ उठाये, प्रतिबिम्बके हाथ भी उठ गये । भला, इतना सुन्दर खेल और क्या होगा ! फिर तो अपने अङ्गोंको विचित्र भाँतिसे प्रकम्पितकर उसकी प्रतिक्रिया वे छायामें देखने लगे, देख-देखकर आनन्द-मग्न होने लगे । और जब अपनी ही प्रतिध्वनिसे खेलनेका क्रम आरम्भ हुआ तब तो कहना ही क्या है ! तुमुल आनन्द-कोलाहलसे समस्त वनप्रान्तर मुखरित हो रहा है । सहसा इसीकी ओर कुछका ध्यान गया तथा प्रश्नोत्तर आरम्भ हुआ । शिशुने उच्च कण्ठसे पुकारा—'अरे ! तुम कौन हो ?' प्रतिध्वनिने इसीकी आवृति कर दी । 'हम तो श्रीकृष्णचन्द्रके सखा हैं ।' प्रतिनादने भी यही उत्तर दिया । 'क्या तुम्हारे साथ भी श्रीकृष्णचन्द्र हैं ?' प्रतिशब्द भी ज्यों-का-त्यों लौट आया । 'हाँ हैं ।' इसका उत्तर भी यही मिला । किंतु इस उत्तरसे कुछ शिशु रुष्ट हो गये—'मिथ्यावादी कहींके ! श्रीकृष्णचन्द्र तो एक हैं, हमारे साथ हैं, तेरे साथ कहाँ हैं ?' प्रत्युत्तर भी यही प्राप्त हुआ । अब तो शिशुओंके रोषका पार नहीं—'रे ! तू भी कोई असुर प्रतीत होता है, पर स्मरण रख, तेरी भी दशा बक-जैसी होगी !' इसके उत्तरमें भी यही शाप उधरसे भी, वनप्रान्तरके अञ्चलसे भी लौट आया । न जाने कितनी देर यह शापानुग्रहकी क्रीड़ा हुई ! इस प्रकार वनमें वत्सचारण करने आकर श्रीकृष्णचन्द्र आज भी सखाओंके साथ बाल्यलीला-विहारका रसपान करने लगे, स्वयं पानकर, वितरण-कर रसमत्त हो उठे—

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः।
तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः॥
यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम्।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे॥
केचिद् वेणून् वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन।
केचिद् भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे॥
विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधुहंसकैः।
बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः॥
विकर्षन्तः कीशवालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान्।
विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु॥
साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरित्प्रस्रवसम्प्लुताः।
विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान्॥
(श्रीमद्भा० १०।१२।५–१०)

चलि गये जमुन तट सबहिन के घट, उमगि अनंदित केलि करैं,
ले बछनि चरावत मिलि सब गावत, कुसुम अनेकनि माल धरैं।
इक छीके छोरत इक इक चोरत, पाक बिबिध बिधि खात यहाँ,
इक मोरनि-बोलनि, हंस-कलोलनि, बोलत बोलनि बोल तहाँ॥
इक कोकिल कूकनि मर्कट हूकनि हूकत जहँ तहँ हास करैं,
इक भौंरनि गुंजनि पहिरत गुंजनि बहिरत कुंजनि स्वाँग धरैं।
इक प्रभुहिं रिझावत, प्रभु सुख पावत, अति प्रवीन गति नृत्त सचैं,
लखि सुर सब तरसत सो सुख बरसत सिसु उर आनद खेल रचैं॥

ज्ञानी एवं योगीगण जिन्हें निर्विशेष ब्रह्मानन्दस्वरूप मानते हैं, दास आदि भक्तोंके लिये जो परमपुरुष परमेश्वर हैं, मायाश्रित विषयविदूषित नेत्रवाले पुरुषोंके लिये जो नरबालकमात्र हैं, उन्हीं स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके साथ गोपशिशुओंका यह अद्भुत विहार हो रहा है! पता नहीं, कैसे, किस जातिके राशि-राशि पुण्योंका यह परिणाम गोपशिशुओंको प्राप्त हुआ है!

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण
साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः॥
(श्रीमद्भा० १०।१२।११)

जिन्होंने यम-नियमका सतत साधनकर अपने चित्तको एकाग्र कर लिया है, जो निर्विकल्प समाधिमें स्थित हो चुके हैं—इस प्रकारके समाहितचित्त योगी भी अनेक जन्मोंमें अपार साधनक्लेश वरण करनेपर भी श्रीकृष्णचन्द्रकी चरणधूलिकणिकाका स्पर्श नहीं प्राप्त करते। किंतु वे ही श्रीकृष्णचन्द्र आज इस वृन्दाकाननमें, व्रजवासियोंके दृष्टिपथमें सतत अवस्थित हैं। इन व्रजवासियोंके अपरिसीम सौभाग्यकी बात कौन बताये, कैसे बताये?

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः
किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम्॥
(श्रीमद्भा० १०।१२।१२)

जाके पद-रज-हित तप करि कै, बहुत काल जोगी दुख भरि कै।
प्रेरित चपल चित्त कहुँ भूरि, सो वह धूरि तदपि हू दूरि।
सो साच्छात दृगन-पथ चहियै, कवन भाग्य ब्रजजनकौ कहियै।

## गणपति-वन्दन

दीनबन्धु हे नाथ! दोष दूषण दुखहारण।
नमो निखिल-खल-दलन सकल-मल-मूल निवारण॥
जय गजेन्द्र-सम-वदन, मदन-दाहक-हर-नन्दन।
जय जग-वन्दित-नन्दिकेश-सुत दुःखनिकन्दन॥
जय षटमुख, गणपति, करिवदन, सुत भवानि हे जयति जय।
मम भक्ति बढ़ै तव चरणमें, भक्त होंहि निर्भय सदय॥

—श्रीरूपनारायण चतुर्वेदी

# सत्सङ्ग-माला

( लेखक—श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास )

[ गताङ्कसे आगे ]

( ६४ ) रोज सबेरे, रात्रिको सोनेके पहले, मध्य रात्रिमें जगनेपर और सबेरे उषाकालमें उठकर नीचे लिखी क्रिया करे। हो सके तो इस प्रकार आसन जमावे। एकान्तमें पहले कुशासन, उसपर मृगचर्म और उसके ऊपर ऊनका आसन, और उसके ऊपर सूती कपड़ेका आसन लगावे। ऐसा न हो सके तो जहाँ जैसा साधन हो उसीके ऊपर एकान्तमें बैठे। और पद्मासन या वैसा ही सुलभ आसन लगावे, सीधा होकर बैठे, आँखें बंद कर ले, और मनसे कहे कि किसी प्रकारका विचार किये बिना भगवान्‌का दर्शन करनेकी बाट जोहते हुए एक चित्तसे बैठना है। तुझे कोई खास जरूरी काम हो तो उसे पहले ही कर ले। इस प्रकार मनको सावधान करके आँखें मीचे। यदि अन्धकार दिखलायी दे तो आँखें द किये बैठा हुआ अन्धकारको देखता रहे। यदि मन किसी विचारमें लगना चाहे तो उसे रोके। जिस प्रकार किसीकी बाट जोहता हुआ मनुष्य एक चित्तसे टकटकी लगाकर देखता है उसी प्रकार आँखें बंद किये भगवान् अभी ही प्रकट होंगे, इसी एक उत्सुकतासे अन्धकारको देखा करे। इस प्रकार नित्य अभ्यास करनेसे वह अन्धकार दीखना बंद हो जायगा और अनेकों प्रकारके दृश्य दिखलायी देने लगेंगे—जैसे विपुल तेज, चन्द्र, तारा, आकाश, बिजली, वर्षा, सूर्य आदि ज्योति इत्यादि। परंतु यह न समझे कि यह जो कुछ दिखलायी देता है, सो परमात्मा है। यह बिल्कुल पक्की बात है कि जो कुछ दिखलायी देता है वह परमात्मा नहीं। ऐसा करते-करते यदि साधक सगुण साकार परमात्माका उपासक होगा तो जिस रूपमें उसकी श्रद्धा होगी, वही रूप धारण करके भगवान् उसे दर्शन देंगे। और यदि वह निराकार निर्गुणका उपासक होगा तो उसे आत्मदर्शन होगा और उसकी समाधिमें स्थिति हो जायगी। उपासकको साकार परमात्माके आकारका दर्शन होता है, उसमें आकार भगवान् नहीं है; बल्कि आकार धारण करनेवाला भगवान् है। जिस प्रकार कपड़ा पहननेवाला राजा होता है, परंतु कपड़ा राजा नहीं होता। उसी प्रकार रूप परमात्मा नहीं है। बल्कि रूपधारी परमात्मा है।* इसलिये रूपका अनादर न करके रूपके साथ रूपमें रहनेवाले अरूप परमात्मामें लीन होना चाहिये। यह अभ्यास जीवके अनेक जन्मका अन्त करनेवाला अन्तिम अभ्यास है, अतः इसमें जल्दीबाजी नहीं करनी चाहिये। धीरज रखकर प्रतिदिन शान्तिसे करते जाना चाहिये। प्रयत्न करते रहनेसे भगवान्‌की कृपासे समय आनेपर फल मिलेगा।

इस क्रियाके करते समय किसी भी अङ्गको दबावे नहीं नाक या कानको न दबावे। स्वाभाविक रीतिसे शान्त चित्तसे मुँह और आँखें बंद करके बैठे। बैठनेका समय धीरे-धीरे बढ़ावे। जल्दबाजी न करे। आज पाँच मिनट तो महीनेभर बाद दस मिनट—इस प्रकार बढ़ावे। एक ही ध्यान रक्खे कि मनमें तरङ्गें न उठने पावें। उठें तो तुरंत रोक दे। इस क्रियाको करनेवाला गृहस्थ हो तो विषयभोगको कम करे। खाने-पीनेमें गरम मसाला, मिर्चा, भारी भोजन न करे। सात्त्विक आहार करे और वह भी अधिक परिमाणमें नहीं। इस क्रियामें बैठनेके पहले, यदि पाखाना-पेशाबकी हाजत हो तो हो आवे। इस क्रियाके करनेकी जिसे इच्छा हो उसे बहुत श्रमवाला व्यावहारिक काम नहीं करना चाहिये। मन चिन्तारहित और प्रसन्न होना चाहिये। मन कामनारहित भगवान्‌के प्रति भक्तियुक्त होना चाहिये। दिन-प्रतिदिन जैसे-जैसे बैठनेका समय बढ़ता जायगा वैसे-वैसे ही मनकी शक्तियाँ भी धीरे-धीरे बढ़ेंगी। दूरकी बात सुन पड़ेगी, दूरकी वस्तु दीख सकेगी, मनकी इच्छाएँ पूर्ण होंगी। दूसरे अपने अधीन रहेंगे। वाक्-सिद्धि प्राप्त होगी। सङ्कल्प-सिद्धि होगी। पर इन सबोंमें यदि मन ललचाया तो जान लो कि पतन हो गया। ये सब भगवान्‌के मार्गमें विघ्न हैं, इसलिये इनका आदर न करे। अहङ्कार न करे। तमाशा करके लोकमें नाम कमानेकी इच्छा न करे। इनको अलग छोड़कर आगे बढ़ना चाहिये और मनको शान्त रखना चाहिये। बाहर तो लोक तथा जगत्‌से मन सदा शान्त रहे, और भीतर कामनाएँ न रहनेसे मन शान्त रहे। इस प्रकार सदा शान्त मन रहे। इस बातको सदा लक्ष्यमें रखकर अभ्यास करते जाना चाहिये।

* वस्तुतः साकार भगवान्‌के रूपमें और भगवान्‌में कोई अंतर नहीं है। दोनों ही सच्चिदानन्द तथा एक हैं।

इससे समयानुसार जगत् सिनेमाके दृश्यों-जैसा जान पड़ेगा और परमात्माका दर्शन होगा।

इस अभ्यासके करते समय सदा सीधा होकर बैठना चाहिये, नहीं तो नींद आयेगी। इस अभ्याससे क्रोध कम होगा। इन्द्रियोंके भोग नीरस लगेंगे। व्यवहारकी बातें कम रुचिकर होंगी। शान्ति अधिक रहेगी। इस अवस्थामें जब साधक बैठे, तब यदि मन दूसरी कोई बात न सुने, दूसरा कुछ न दीखे, दूसरी बात न जाने और दूसरा कुछ न विचारे तो समझना चाहिये कि साधन परिपक्क होता जा रहा है। अभ्यास करनेके बाद उठनेपर पता लगेगा कि मन दूसरी बात सुनता, देखता, जानता या विचारता था या नहीं। धैर्य धारण करके इस अभ्यासमें लगे रहना चाहिये।

( ६५ ) अब जाग्रत् अवस्थाके दूसरे मनके लिये अभ्यास बतलाता हूँ। इस प्रकार रहो कि मनमें सदा प्रसन्नता बनी रहे। शरीरमें चित्त रहता है। वह शरीरसे बाहर चला जाय तो कहा जाता है कि मनुष्य मर गया। शरीरमें चित्त रहते समय यदि कोई अंट-संट बोलता या बर्तता हो तो लोग कहते हैं कि उसका चित्त खिसक गया है, वह पागल जान पड़ता है। अब तीसरे प्रकारके ऐसे लोग हैं कि जिनका चित्त किसीके कुछ कहनेपर या विपत्तिमें या कामनामें एक बार अपनी जगह छोड़कर खिसक जाता है, और फिर पीछे ठिकाने आ जाता है। ऐसे लोग संसारी कहलाते हैं। जब चित्त अपनी जगह छोड़कर खिसक जाता है उस अवस्थामें मनुष्य जो कुछ बोलता है वह दुःखदायी होता है। खिसके हुए चित्तकी स्थितिमें ही क्रोध, शोक, हर्ष, विषाद, चिन्ता, तिरस्कार, अपमान और दुःख होता है। इन सारे द्वन्द्वोंका अनुभव करते हुए चित्तमें जब शान्ति और समझ आती है, तब वह अपने स्थानपर आता है और इन सबके लिये उसे परिताप होता है। अब रही चौथी अवस्था, जिसमें चित्त चाहे जो कुछ भी हो परंतु अपने स्थानको नहीं छोड़ता, और सदा स्थिर रहता है, शान्त रहता है, दृढ़ रहता है। यह चित्तकी स्थितप्रज्ञ अवस्था है, यह उसकी समाहित अवस्था है। गीतामें कहा है कि जिसके चित्तकी अवस्था सुख-दुःखमें, मान-अपमानमें, शीत और उष्णमें तथा दूसरे द्वन्द्वोंमें सदा शान्त रहती है उसको परमात्मा नित्य समीप भासते हैं। इसलिये यही एक लक्ष्य रखना चाहिये कि मन शान्त रहे। जगत्में चाहे जो हो; जिनको अपने आत्मीय समझते हैं उनको चाहे जो हो, परंतु मनको सदा प्रसन्न रखना चाहिये। इसका नाम है 'जाग्रत्-समाधि'। सारे जगत्का नाश हो जाय, तो चित्त ऐसा है कि उसे नया बना सकता है। क्योंकि जगत् तो किसीके चित्तकी ही सृष्टि है। चित्त कर्ता है, जगत् कार्य है। कार्यकी अपेक्षा कर्ताकी कीमत अधिक है। कार्यका नाश हो जाय तो कर्ता दूसरा कार्य खड़ा कर देगा। परंतु कर्ताका नाश हो जाय तो कार्य किस प्रकारसे हो सकेगा? इसलिये जगत्में सम्पत्ति, शान्ति और आनन्दकी इच्छा करनेवालेको चाहिये कि प्रत्येक उपायसे चित्तको नित्य शान्त तथा क्रोध, उद्वेग और शोकसे रहित बनाये रहे।

जगत्में बड़े-से-बड़ा वह है कि जिसका मन चलायमान नहीं होता। क्रिया जो कुछ भी करो, पर करो स्वस्थ मनसे, स्वस्थ मनसे शुभ ही क्रिया होती है। जगत् रणक्षेत्र है। उसमें चित्त योद्धा है। जो चित्त जगत्के आघात और प्रलोभनोंसे अपनी जगहको छोड़कर भाग जाता है वह हारा हुआ और मारा हुआ है, और इसलिये सदा दुखी रहता है। और जो सदा अडिग, अचल और जाग्रत् रहता है वह सदा अपने समीप रहनेवाले परमात्माकी कृपासे नित्य आनन्दित रहता है। जो चित्त जगत्के आन्दोलनसे हार मानकर जड बन जाता है वह नगण्य है। इसलिये वह तो नाशको प्राप्त होता है। अतएव प्रतिदिन यह अभ्यास करो, जिससे चित्त स्वस्थ, शान्त तथा सदा प्रसन्न रहे। कायर होकर दूर न भागे और योद्धाके समान बीचमें खड़े रहकर आघातको सहता हुआ जो अडिग डटा रहे, वह शूरवीर है। जो घरमें बैठा रहता है, जो रणक्षेत्रसे डरकर भाग जाता है, वह शूरवीर नहीं। तुम युद्धका प्रसङ्ग खड़ा मत करो, युद्धका प्रसङ्ग तैयार मत करो। शूरवीर बिना कारणके युद्ध खड़ा नहीं करते, परंतु युद्ध आ पड़नेपर उसका स्वागत करते हैं। उसी प्रकार तुम भी जगत्में रहते हुए जो प्रसङ्ग आ पड़ें, उनमें धीर, शान्त और प्रसन्न चित्तसे खड़े रहकर कर्तव्य-कर्म करनेके अभ्यासी बनो। इस प्रकारका अभ्यासी काञ्चन-कामिनीके कारण स्वधर्मसे चलायमान नहीं होता, परुष वचन सुनकर क्रोध नहीं करता, अपमानसे अस्वस्थ नहीं होता, लोभसे धर्मका त्याग नहीं करता। दुःखमें उसका धैर्य और उद्यम कम नहीं होता। वह सदा उद्यमी, सदा स्वस्थ और सदा भगवान्में लीनचित्तवाला होता है।

( ६६ ) शरीरमें अन्तःकरण ही शरीरको क्रिया करनेके लिये प्रेरित करता है और शक्ति प्रदान करता है। अन्तःकरणमें यह शक्ति निजी नहीं होती, बल्कि उसे यह शक्ति परमात्मासे मिलती है। परमात्मा कहें या आत्मा—वह सबके शरीरमें है। अन्तःकरणमें

दो शक्तियाँ है—इच्छाशक्ति और प्राणशक्ति। अन्तःकरणमें इच्छा ज्ञानके अधीन होती है। सबको सुखकी इच्छा होती है। वह सुख किस वस्तुमें है, क्या करनेसे मिलेगा, यह निश्चय करना उसके ज्ञानके अधीन है। पहले चित्त यह जानता है कि अमुक वस्तुमें सुख है। यह जानकारी उसे देखने, सुनने, बाँचने आदिसे होती है। अमुक विषयमें सुख मिलेगा यह जानकर ही वह मनपे उसका चिन्तन करता है। चिन्तन करनेसे उस वस्तुके प्रति प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति उत्पन्न होनेसे उसके लिये इच्छा होती है। इच्छा होनेपर प्रयत्न होता है। प्रयत्न करते समय यदि विघ्न आते हैं तो उनका प्रयत्नके द्वारा ही नाश करता है। और जिसका नाश नहीं हो सकता उसके प्रति क्रोध होता है। क्रोध होनेपर मोह होता है। मोह होनेपर बुद्धिमें भ्रम पैदा होता है। इस कारण बुद्धि सारासार, लाभ-हानि आदिका निश्चय नहीं कर सकती। मतलब यह है कि बुद्धि अपनी जगहसे खिसक जाती है, और उस खिसकी हुई बुद्धिवालेका नाश हो जाता है। इस सारे क्रमको देखते हुए जीव जिसके संसर्गमें आकर जैसा संस्कारवाला होता है वैसा करनेकी उसकी बुद्धि होती है। इसीलिये जिसके-जिसके सम्पर्कमें इन्द्रियोंके द्वारा मन आता है वैसे-वैसे संस्कार चित्तमें जमा होते जाते हैं। अतएव जिसको जैसा होना हो, वैसा संस्कार जिससे मिले, उसके संसर्गमें आना चाहिये। मनुष्य व्यसनी होनेके पहले व्यसनीके संगमें, व्यसनसे आनन्द होता है—ऐसी बातें करनेवालोंके संगमें आता है। इन सब बातोंसे उस व्यसनके प्रति उसके मनमें प्रीति उत्पन्न होती है और उसके बाद क्रिया होती है। सारी क्रियाओंके लिये यह मिसाल है। विषयोंमें जीव रचा-पचा रहता है, इसका कारण यह है कि विषयोंमें सुख है, इस बातको बतानेवाला साहित्य वह देखता है, बाँचता है, सुनता है और जानता है। इस प्रकारके संस्कार अनन्त जन्मोंके अन्तःकरणमें भरे हैं। भोगोंमें दुःख है, जन्म-मरण है—आदि जानकर उनसे मनको मोड़ना, उन सारे संस्कारोंका नाश करना, उनसे विरुद्ध संस्कार जहाँसे मिलें उन्हें लेना चाहिये।

एक ओर भोग हैं, जिनसे जन्म-मरण, सुख-दुःख आदि-का चक्र चालू रहता है। दूसरी ओर भोगका त्याग है, जिससे मोक्ष मिलता है। यह मोक्ष भोगके त्याग, सच्चे ज्ञानके बिना नहीं मिलता। मनुष्य जो उपवास करता है या व्रत-नियम लेकर भोग-त्याग करता है, यह थोड़े समयके लिये होता है। अन्तः-करणमें—मनके भीतर तो भोगके सुखका रसास्वाद बना ही रहता है। समय आनेपर विशेष वेगपूर्वक वह भभक उठता है। जबतक भोगोंके लिये मनके अंदरसे रस नहीं चला जाता, तबतक भोगोंका त्याग नहीं होता। वह रस कब जाता है? जब कि आत्मा या परमात्माका साक्षात्कार हो जाता है। बालक लकड़ीके घोड़ेके उपयोगका आनन्द तभीतक मानता है जबतक वह सच्चे घोड़ेकी सवारी नहीं जान लेता। सच्चे घोड़ेका सवार होनेपर तो वह लकड़ीके घोड़ेको याद भी नहीं करता। उसी प्रकार आत्मसुखका स्वाद प्राप्त होनेपर मन भोग-सुखका त्याग कर देता है। यह आत्म-सुख सत्सङ्ग, विचार, वैराग्य और भगवान्‌की भक्तिके बिना कभी नहीं मिलता। इसलिये नित्य ही इनका सेवन करना चाहिये।

( ६७ ) अन्तःकरणमें प्राण और इच्छा दोनों रहते हैं। प्राणसे क्रिया करनेमें बल मिलता है, और इच्छासे यह मालूम होता है कि वह क्रिया कैसे करनी चाहिये। यह अन्तःकरणका खोखला, जिसमें प्राण और इच्छा दोनों रहते हैं, तीन गुणों-वाला होता है—सत्त्व, रज और तम। किसी भी जीवका अन्तःकरण—चींटीसे ब्रह्मापर्यन्त सभीका इन तीनों गुणोंसे युक्त होता है। किसीमें सत्त्व अधिक होता है, रज और तम थोड़ा। किसीमें रज अधिक होता है, सत्त्व और तम थोड़ा। और किसीमें तम अधिक होता है, और रज-सत्त्व थोड़ा। परंतु प्रत्येकमें होते ये अवश्य हैं। आहार, सङ्ग और संसर्गसे ये गुण प्रवेश करते हैं। ये तीनों गुण क्या-क्या क्रिया करते हैं, और इन तीनों गुणवालेको क्या-क्या रुचता है, यह बात गीतामें कही गयी है। गुण तो ये तीनों सभीमें होते हैं परंतु जिसमें जो विशेष गुण होता है वह अपने अनुकूल क्रिया करता है। फिर इस गुणोंकी विशेषता नित्य, सब समय एक-सी नहीं होती। एक ही व्यक्तिमें कभी सत्त्व गुण विशेष झलकता है, कभी रजोगुण और कभी तमोगुण। इस चित्तको वश करनेका कोई दूसरा साधन जगत्‌में नहीं है, यह स्वतन्त्र है। यह चित्त स्वयं अपने-आप ही अपने प्रयत्नसे ही शान्त होता है। चित्तमें तीन गुण होते हैं। उनमें तमोगुणको रजोगुणसे शान्त करना चाहिये। यानी रजोगुणसे युक्त सत्कर्मों और धार्मिक क्रियाओंसे दबाना चाहिये। रजोगुणको सत्त्वगुणसे शान्त करे, और सत्त्वगुणको निर्गुणसे शान्त करे। ये सारी क्रियाएँ अपने-आपमें शान्त होती हैं—( १ ) सदाचारका पालन करना, ( २ ) सत्सङ्ग करना, ( ३ ) धर्म-कर्म और भगवान्‌के निमित्त कर्म करना, ( ४ ) सात्त्विक आहार, सद्ग्रन्थोंका वाचन, सात्त्विक स्थानका

सेवन, एकान्तवास और सत्पुरुषोंके सहवासमें रहना, (५) भगवान्‌की भक्ति करना और भगवान्‌के अनन्यशरण होना।

विवेक, विचार, भोग-त्याग, कर्मफल-त्याग और सत्य तथा प्रिय वाणीका सेवन—इन सबको करते-करते यह चित्त भगवान्‌में लीन होता है।

( ६८ ) दो अभ्यास बतलाता हूँ, इन दोनोंको सिद्ध करनेके लिये प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिये—

१—सत्य बोलना और मीठा बोलना।

२—कभी क्रोध नहीं करना। घबराना नहीं। क्रिया जो कुछ भी करो, पर करो शान्तचित्तसे, प्रसन्न मनसे। मतलब यह कि इस प्रकार बर्तना चाहिये कि मन सदा प्रसन्न रहे, सदा शान्त रहे। प्रतिदिन ध्यान रक्खो कि मन प्रसन्न और शान्त तो है? बोलनेके पहले यह देख लो कि जो कुछ बोलते हो वह सत्य और प्रिय तो है? यह अभ्यास सहज ही नहीं सिद्ध होता है। अनेक वर्षोंके प्रयत्नसे सिद्ध होगा। परंतु इसके सिद्ध किये बिना छुटकारा नहीं। इसलिये खूब धीरज और लगनके साथ इस अभ्यासको सिद्ध करनेका यत्न करना चाहिये।

( ६९ ) जैसा सङ्ग वैसा मन। इसलिये शान्त, सदाचारी और ज्ञानी भक्तका सङ्ग करना चाहिये। वैसा व्यक्ति न मिले तो भगवान्‌के अवतारकी कथाओंके ग्रन्थोंको बाँचना चाहिये। ज्ञान और भक्तिके ग्रन्थोंको बाँचना चाहिये। विषयवासनाको निर्मूल करनेवाली पुस्तकोंको बाँचना चाहिये। जैसा बाँचोगे वैसा ही आचरण करनेकी बुद्धि होगी। जगत्‌की अनित्यता और आत्मा—परमात्माकी नित्यताको प्रयत्न करके बुद्धिमें उतारना है। मन सुखकी इच्छामें दुःखसे भरपूर जगत्‌के भोगोंकी ओर फँसा है। उसमेंसे उसे पीछे लौटाकर परमात्मा, जो आनन्दका भण्डार है, उसमें लगाना है। इस कार्यमें समर्थन प्रदान करनेवाले पुरुषोंका सङ्ग तथा पुस्तकोंका वाचन करना चाहिये। इसके विरुद्ध दूसरे सङ्गोंका त्याग करना चाहिये।

( ७० ) इच्छासे जन्म-मरण है। इच्छासे देहकी प्राप्ति है। चित्त भोगकी इच्छा करता है। शरीरके बिना भोग भोगा नहीं जा सकता। इसलिये जैसे भोगकी इच्छा की जायगी उसीके अनुकूल भोग भोगनेवाले शरीरकी प्राप्ति होगी। इस-लिये जीवनमें इच्छाओंको शान्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसके तीन अभ्यास हैं—पहला, मनको निर्विचार, निःसङ्कल्प अवस्थामें बैठानेका अभ्यास—प्राणायाम, ध्यान, समाधि आदिके द्वारा करना। यह अभ्यास स्वतन्त्र नहीं है। इस अभ्याससे उठनेके बाद मन इच्छाएँ करने लगता है। और इस अभ्यासकी विलक्षणता यह है कि इससे इच्छाको झट सिद्ध करनेकी शक्ति आ जाती है। इसलिये यह मार्ग देखनेमें तो रोचक है, पर भयङ्कर है। और स्वतन्त्ररूपसे इच्छात्याग या मोक्षकी प्राप्तिके लिये सीधा मार्ग नहीं है। दूसरा मार्ग है निष्कामभक्तिका। भगवान् जो अखिल विश्वके कर्ता, नियन्ता, पालनकर्ता, संहारकर्ता, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् आदि गुणोंसे युक्त हैं, उनके निराकार या साकाररूपकी उपासना करके, उनके सिवा अन्य सारी इच्छाओं-का त्याग करके, उन्हींको ही प्राप्त करनेकी इच्छासे, मनसे इसके सिवा अन्य सारी इच्छाओंके त्यागकी धीरे-धीरे चेष्टा करनी चाहिये। यह मार्ग विशेष सहज है। इसमें आनेवाले विघ्नोंको उसके उपास्यदेव नष्ट कर देते हैं। इस मार्गमें एक बार पड़ जानेवाले चित्तको उसका इष्ट अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस मार्गद्वारा चित्त इच्छारहित होकर परमपदमें प्रवेश करता है। तीसरा मार्ग है—विचारमार्ग, जिसको ज्ञानमार्ग कहते हैं। इसमें वैराग्यकी, तीव्रबुद्धिकी तथा तपकी विशेष आवश्यकता होती है। मैं वही सत्यं और अविनाशीपद-स्वरूप परब्रह्म हूँ, और जो कुछ है या होगा, वह सब नाशवान्, मिथ्या और मायामय है और इस कारण दुःख-रूप है, इसलिये उसकी इच्छाका त्याग करके इच्छारहित मनसे निःसङ्कल्प हो रहना चाहिये। यह अभ्यास उपर्युक्त दोनोंसे भी सहज जान पड़ता है, पर है बहुत कठिन। और इस मार्गमें चलनेवाले कब छूट जायँ, कब बेहाल हो जायँ, यह बात समझमें नहीं आती। इस कालमें उत्तम-से-उत्तम यह है कि पहले और अन्तिम मार्गको गौणरूपसे यानी साधनके रूपमें उपयोग करके मध्यमार्गको मुख्यरूपमें माने, और भक्ति, ईश्वरका ध्यान और ईश्वरका ज्ञान—इन तीनोंके साथ भक्ति-मार्गका साधन करे।

तुमको जो मार्ग अच्छा लगे, उसमें चलनेकी चेष्टा करो। पर करोड़ों उपाय करनेपर भी भोगकी इच्छाका त्याग किये बिना—सुखकी इच्छाको त्यागे बिना—अखण्ड शान्ति, अखण्ड आनन्द, मोक्षकी प्राप्ति होगी ही नहीं। सारे शास्त्रोंका लक्ष्य इच्छात्यागके रहस्यमें है। इच्छात्याग और मनकी शान्ति—दोनों परस्पर सम्बन्धवाले हैं, अतः साथ ही सिद्ध होते हैं। इच्छा और व्याकुलता दोनोंका त्याग किये बिना करोड़ों खर्च करनेपर भी मनको

सच्ची शान्ति या सच्चा सुख अथवा आनन्द नहीं मिलेगा।

(७१) ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं, इसे पक्का समझो। ज्ञान यानी यथार्थज्ञान। यह यथार्थज्ञान तभी होता है जब चित्त निर्मल होता है। निर्मल चित्तमें जो ज्ञान स्फुरित होता है वह यथार्थ-ज्ञान कहलाता है। फलकी इच्छाके बिना दान, तप, पुण्य, कर्म और उपासना—ये सब चित्तको निर्मल करनेके साधन हैं। चित्तको मलिन बनानेवाली तो इच्छा है। और चित्तको निर्मल बनानेवाला इच्छाका त्याग है। इच्छाके त्यागके बिना लाखों अन्य उपायोंसे चित्त निर्मल नहीं होता, और चित्तके निर्मल हुए बिना करोड़ों अन्य उपायोंसे सच्चा ज्ञान नहीं होता। सच्चा ज्ञान निर्मल चित्तमें कहे सो होता है, यह जानना चाहिये। कोई कहेंगे ज्ञान पुस्तकमें लिखा है। दुनियामें जो पुस्तकें लिखी गयी हैं, वे बुद्धिसे लिखी गयी हैं। बोलनेवाली और लिखनेवाली तो बुद्धि ही न है ? और वह बुद्धि जड है न ? परंतु वह बुद्धि भगवत्स्वरूप आत्माके पास रहकर उसके द्वारा ही सब कुछ जानती है। आत्मा ज्ञानका खजाना है, ज्ञानस्वरूप है। आत्मासे अखिल जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाश होता है। इस आत्मासे ही ज्ञान प्राप्त होता है। जिस प्रकार निर्मल शीशा वस्तुको यथार्थरूपमें दिखला देता है उसी प्रकार निर्मल चित्तमें आत्मा यथार्थतः प्रकाशित होता है। आत्मा कल्पवृक्ष है, आत्मा चिन्तामणि है, आत्मा कामधेनु है। निर्मल चित्तमें जो-जो कल्पनाएँ होती हैं उन्हें आत्मा सिद्ध कर देता है। परंतु उसी निर्मल चित्तसे कामनाओंको सिद्ध करने जाते ही, इच्छाओंके खड़े होते ही चित्तकी निर्मलता मिट जाती है, वह मलिन हो जाता है, और उसकी शक्ति नाश हो जाती है। इसलिये शुद्ध चित्तमें इच्छाओंको उठने न देना और शुद्ध चित्तको आत्माके समीप रखना बन पड़े तो यथार्थज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है, और उस ज्ञानके उद्भवके साथ ही मुक्ति प्राप्त होती है।

ज्ञान दो प्रकारका है। एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। निर्मल चित्तवालेको प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। वह जगत्को और अपनेको यथार्थरूपमें समझता है। समस्त कामनाओंका त्याग करके या तो भगवान्की उपासना करनेसे या ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुकी सेवासे ज्ञान प्राप्त होता है। सद्गुरुकी सेवा करनेसे गुरु महाराज प्रत्यक्ष बोध प्रदान करते हैं। इन दोनों उपासनाओंके सिवा तीसरा मार्ग नहीं है। दोनों वस्तुतः एक ही हैं। गुरुकी उपासना भी परमात्माके ही रूपमें करनी पड़ती है। गुरुके हाड़-मांसके शरीरमें रहनेवाले चैतन्यदेवकी ही उपासना करनी पड़ती है। भगवान्में भी मूर्ति रहनेवाले चैतन्यदेवकी ही उपासना करनी पड़ती है। आपाततः रीति कुछ जुदी है। इन दोनोंमें निष्काम सेवा करनेवालेको, अथवा मोक्षकी इच्छासे सेवा करनेवालेको अपने आत्मामें ही काल-क्रमसे ज्ञान स्फुरित होता है। उसे ऐसा मालूम होता है कि कोई भीतरसे कह रहा है। इस प्रकारसे उपासना करनेवालोंको उपास्यदेव बलात् शुद्ध ज्ञान प्रदान कर मुक्ति देता है। इसलिये जो कुछ कर्म या उपासना, दान-पुण्य, भजन-कीर्तन या तप आदि करे, वह फलकी इच्छासे रहित भगवान्की प्राप्ति या मुक्तिकी प्राप्तिके निमित्त करे। ऐसा करते रहनेपर काल-क्रमसे मुक्ति प्राप्त हो जायगी। किया हुआ कार्य असफल नहीं होता। निष्काम उपासना अवश्य ही मुक्ति प्रदान करती है। इसलिये करनेमें लग जाओ और धीरज धरकर प्रयत्न तथा लगनसे उसीमें लगे रहो।

(७२) अप्रसन्न चित्त होते ही बुद्धि अपनी जगहसे खिसक जाती है। भ्रमित हो जाती है। बुद्धि अपने सन्तुलनको खो देती है। सारासारका विचार नहीं रह जाता। न बोलने योग्य बातें बोल बैठता है, न करने योग्य काम कर बैठता है। यह सब अप्रसन्न चित्तसे होता है, तो फिर चित्तको सदा प्रसन्न कैसे रक्खा जाय ? चित्तको अप्रसन्न करनेवाले मनुष्य मिलेंगे ही, ऐसे प्रसङ्ग आवेंगे ही, चित्त अप्रसन्न हो ऐसी बातें होंगी ही। चित्तको अप्रसन्न करनेवाले संयोग किसीको न प्राप्त हुए हों, क्या ऐसा कहीं हुआ है ? शीत-घाम, सुख-दुःख, मान-अपमान, जीवन-मरण, जरा और व्याधि, सबका आना-जाना होगा ही। इन द्वन्द्वोंके बीच चित्त किस प्रकार प्रसन्न रह सकता है ? इसीके लिये शास्त्रोंका अभ्यास और सत्सङ्ग है। इतना ही जाननेके लिये है। शास्त्र और संत कहते हैं कि अनुकूल और प्रतिकूल तो होते ही रहेंगे। पर उन सबसे तुम असङ्ग हो। तुम आत्मा हो। उनका तुमपर कोई असर नहीं है, उनका असर तो शरीरपर है। तुम तो नित्य-मुक्त, शुद्ध-बुद्ध, निर्मल आत्मा हो, अविनाशी हो, निर्विकार हो। चित्तमें यह ज्ञान जिस परिमाणमें बसेगा उसी परिमाणमें चित्तमें प्रसन्नता रहेगी। आत्मज्ञानके बिना चित्तमें नित्य प्रसन्नता रहती ही नहीं। गीता और सांख्यदर्शन तथा दूसरे शास्त्र बतलाते हैं कि 'मैं असङ्ग हूँ, आत्मा हूँ'—यह दृढ़ निश्चय किये बिना सच्ची प्रसन्नता, शान्ति और आनन्दकी आशा करना व्यर्थ है।

( ७३ ) विचारसागर या पञ्चीकरण घोखकर बोलनेसे कोई ज्ञानी नहीं हो सकता । अथवा वेदान्तकी पुस्तकोंको बाँचकर, कण्ठाग्र करके बोलनेसे कोई ज्ञानी नहीं बन सकता । इस लोक या परलोककी कोई भी कामना जिसके चित्तको आकर्षित नहीं कर सकती, वही ज्ञानी है । जिसका चित्त कामनारहित होनेके कारण निर्मल और शान्त है; जिसकी सारी आशा-तृष्णा शान्त हो गयी है, वह ज्ञानी है । ज्ञानीमें मान नहीं होता, दम्भ नहीं होता; उसमें अहिंसा, क्षमा, सरलता सदा रहती है, गुरुजनकी उपासना होती है; पवित्रता होती है, स्थिरचित्त होता है, मनोनिग्रह होता है, इन्द्रियोंके भोगोंके प्रति वैराग्य होता है, अहङ्कारका अभाव होता है, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिके कारण शरीरमें और संसारमें जो दुःख और दोषोंको बारंबार देखता है, पुत्र-स्त्री और घर आदिमें जिसकी आसक्ति नहीं है, अच्छे और बुरे संयोगोंमें जिसका चित्त स्थिर और शान्त रहता है, भगवान्में निष्काम भक्ति होती है, एकान्त सेवन होता है, जनसमुदायमें जिसे प्रीति नहीं होती है, जिसमें आत्मज्ञान और तत्त्वज्ञान वास करता है, ऐसे ज्ञानीके लक्षण गीताके तेरहवें अध्यायमें कहे गये हैं। इनको साधक अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करे । चित्तके भोगमें आकर्षणका ही नाम जन्म-मरण है, और चित्तको परमात्मामें लीन करनेका नाम मोक्ष है । इसलिये प्रत्येक उपायसे चित्तको भोगसे खींचकर परमात्मामें लगाओ । इस अभ्याससे सच्ची शान्ति, सुख, आनन्द और मुक्तिकी प्राप्ति होगी ।

( ७४ ) अब चित्तके शान्त होनेका उपाय बतलाता हूँ । जहाँ प्राकृतिक वातावरण हो, जहाँ बैठकर महापुरुषोंने तप किया हो, ऐसे नदी, तालाब, सरोवर, समुद्र, पर्वत आदिके समीप तीर्थस्थानोंमें जाना चाहिये । वहाँ जानेपर वहाँके उपद्रवरहित वातावरणसे चित्तमें शान्ति आयेगी । वहाँ जाकर भी खाने-पीने और भोग-विलासमें समय नहीं लगाना चाहिये । वहाँ जाकर दान-पुण्य, सत्सङ्ग, भगवन्नाम-का जप आदि करे । भोगका त्याग करे । ब्रह्मचर्यका पालन करे । भारी भोजन न करे । हो सके तो फलाहार या एक वक्त भोजन करे । इस प्रकारका किया हुआ तीर्थसेवन मनको शान्त करके मोक्षके मार्गमें ले जाता है ।

दूसरे, किसी-न-किसी इष्टदेवकी उपासना करे । बेकार समयमें, घूमते-फिरते और काम करते सदा इष्टदेवके नामका जप करे और प्रतिदिन नियमित बैठकर भी करे । भगवत्कथा-का श्रवण करे, कीर्तन करे । भगवान्की मूर्तिका प्रेमसे दर्शन करे । प्राणिमात्रके प्रति प्रीति और दया रक्खे । भगवान्के मन्दिरको झाड़ना-बुहारना, साफ-सुथरा रखना, हो सके और शक्ति हो तो नया मन्दिर बनवाना, पुरानेकी मरम्मत कराना । यदि यह न हो सके तो दूसरे जो ऐसा काम करते हों उसमें सहायता करना । ऐसा काम करना कि जिससे प्राणिमात्रको सुख पहुँचे । दूसरे करते हों उसमें मदद करना । जिसका सम्पर्क हो प्रसन्न चित्तसे उसके साथ काम करे, हँसकर अलग हो, किसीको धोखा न दे । किसीका कुछ ले नहीं । मीठी और सत्यवाणी बोले । सबको या तो भगवत्-स्वरूप जाने या आत्मस्वरूप । किसीका तिरस्कार न करे, किसीका अपमान न करे । जो बन पड़े, सो दे डाले । जितनी बन पड़े, भलाई करे । काम-धंधा अपने धर्मानुसार करता रहे और भगवान्का भजन करता रहे । देव, ब्राह्मण, गाय, गुरु, पूज्यजन, रोगी, बालक और आश्रित लोगोंका सम्मान करे और उनको सन्तोष दे । गुणोंको अपनेमें उतारे । सद्गुणसे सुख होता है और दुर्गुणसे दुःख होता है । चित्तकी शान्ति ही सुख है । चित्तकी अशान्ति ही दुःख है । इसलिये प्रत्येक उपायसे अपने दुर्गुणको निकालकर सद्गुणको धारण करे । इसीसे सच्ची शान्ति होगी ।

( ७५ ) शास्त्र, पुराण तथा वैसे ही दूसरे धार्मिक ग्रन्थ या इतिहास बाँचे । उनमें लिखी बातें सच्ची हैं या झूठी, इसका विचार और चर्चा करने न बैठे । केवल उनका सार ग्रहण करे । उनमें जो लम्बा वर्णन लिखा है सो सार समझानेके लिये ही । कुछ बातें तो ऐसी होती हैं जो सच्ची नहीं जान पड़तीं । कितनी ही बातें ऐसी होती हैं जिनसे देवताओंमें अश्रद्धा उत्पन्न होती है। तुमको तो इन सबमें इतना ही जानना है कि ऐसे-ऐसे सामर्थ्यवाले और तपके भण्डार देवता तथा देवता-जैसे दूसरे लोग भी चले गये तो मेरी क्या गिनती है ? जिसने जन्म लिया है वह तो मरेगा ही । जो माया है वह अदृश्य होगी ही । जिसका संयोग है उसका वियोग होना ही है । यह सब तो होता ही रहेगा । सब ही निर्मित है । सिनेमाका फिल्म जिस प्रकार निश्चित है और पर्देके ऊपर कुछ नहीं होनेपर भी उसमें नदी, जंगल, पहाड़, शहर और प्राणिमात्र दिखलायी पड़ते हैं, बोलते, चलते-फिरते और काम करते दीख पड़ते हैं, वे सब जिस प्रकार असत्य हैं और वहाँ सफेद पर्देके सिवा सच्चा कुछ भी नहीं है; उसी प्रकार यह जगत् परमात्मारूपी पर्देके ऊपर चेष्टा

करता दीख पड़ता है, पर वह मिथ्या है । नाशवान् है । वास्तविक तो परमात्मा है । जगत् जो दीख पड़ता है वह तो दीखता ही रहेगा । वह रुकेगा नहीं, सदा चलता ही रहेगा । सब निश्चित है । जो कुछ होनेवाला है सब निश्चित है । इसलिये मनको शान्त कर, भटकना छोड़कर देखा करो कि 'मैं आत्मा हूँ, जगत्से असङ्ग हूँ, परमात्माका अंश या तद्रूप हूँ ।' इसका अभ्यास करते हुए सदा आनन्दमें रहनेका अभ्यास करो ।

# वेदोंके चार तत्त्व

( लेखक—श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी डाँगी )

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसके निर्माणद्वारा मानव-समाजपर अनुपम उपकार किये हैं । यों तो उनका कहना है कि 'मैंने यह रघुनाथ-गाथा 'स्वान्तः-सुखाय' प्रकट की है । परंतु उनके 'स्वान्तः' को सम्पूर्ण भारतवर्षका हृदय ही समझना चाहिये । जब हमारे देशके निवासी वेदके तत्त्वोंको भूल गये थे और घोर कलिकालके वशमें होकर दुराचारपरायण हो रहे थे, तब उन्होंने हमको राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका मूर्तिमान् स्वरूप बतलाकर वेदोंके चारों तत्त्वोंका संरक्षण किया ।

बालकाण्डमें ज्ञानी मुनियोंके द्वारा दशरथजीके प्रति जो वचन कहे गये हैं वे हमारे कथनको प्रमाणित करते हैं ।

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी । बेद-तत्त्व नृप तव सुत चारी ॥

अर्थात् गुरु महाराज वशिष्ठजीने मनमें अच्छी तरहसे विचार करके ही चारों नाम रक्खे हैं । हे राजन् ! तुम्हारे चारों ही पुत्र वेदोंके चार तत्त्व मूर्तिमान् स्वरूप धारण करके आये हैं । अब हमें विचार करना है कि ज्ञानी मुनियोंके इन वचनोंमें किस प्रकार परम सत्य भरा हुआ है । ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और कर्म—ये चारों ही वेदतत्त्व हैं । भगवान् श्रीरामचन्द्र ज्ञानस्वरूप हैं, जिनके दिव्य प्रकाशमें सब तत्त्व अपना-अपना कार्य ठीक तरहसे कर सकते हैं । क्योंकि वे परमकुशला कौसल्याके सुपुत्र हैं । परम श्रेष्ठ मैत्रीकी आदर्शरूपिणी नारी महारानी सुमित्राने लक्ष्मण और शत्रुघ्नके रूपमें भक्तितत्त्व और कर्मतत्त्वको उत्पन्न किया है । भरतजी वैराग्यके जाज्वल्यमान प्रतीक हैं । आलस्य ही हमारा शत्रु है । जिसका नाश करनेवाले कर्मतत्त्वरूप शत्रुघ्न इन वैराग्य-स्वरूप भरतजीके अनुशासनमें ही रहते हैं, तथा हमारा भरण-पोषण और संरक्षण होता है । अगर हमारा कर्म वैराग्यके साथ न रहे तो वह शैतानका कर्म है । और वैराग्यमें कर्मको अपने साथ नहीं रक्खा तो वह हैवानोंका वैराग्य है । परंतु भरत-शत्रुघ्न निरन्तर साथ हैं । इसलिये वे मानवताकी स्थापनामें सफल हो सके ।

लक्ष्मणजी उपासना-भक्तिके आदर्श प्रतीक हैं । यह उपासना-भक्ति ज्ञानस्वरूप भगवान्का क्षणभर भी साथ नहीं छोड़ती । इसीलिये मानवताका संरक्षण हो सका । ज्ञानहीन भक्ति हैवानियत है और भक्तिहीन ज्ञान शैतानियत है । हमारे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इस विश्वके विचित्र चित्रकूटपर जब एक साथ मिलते हैं, तब मानवता अपने सम्पूर्णरूपमें प्रस्फुटित होती है । और वहींपर ज्ञान भक्तिरूप राम-लक्ष्मणको अपने हृदयमें बसाकर जब भरतजी वैराग्यपूर्ण कर्मकी घोषणा करते हैं तभी अयोध्याके राज्य चलानेमें समर्थ होते हैं । उसी प्रकार ज्ञान-भक्तिस्वरूप राम-लक्ष्मण वैराग्य-कर्मरूप भरत-शत्रुघ्नको अपने दिलमें मजबूत कर लेते हैं । तभी वे सफलतापूर्वक राक्षसोंका संहार कर सकते हैं । अगर ज्ञान और भक्तिमें वैराग्यपूर्ण कर्मका मिश्रण नहीं हो तो मङ्गलकार्य अधूरा ही रहेगा ।

यों तो इन चारों तत्त्वोंको हम अलग-अलग कह सकते हैं, पर सचमुच इन्हें हम अलग-अलग कर नहीं सकते । क्योंकि वे अलग-अलग रह नहीं सकते । मिठाई खायी तो उसके रंगरूप, उसके वज़न, उसकी लम्बाई-चौड़ाई और उसकी सुगन्ध-मधुरता ये सब अलग-अलग कहे जानेपर भी पेटमें एक साथ पहुँच जाते हैं । यह कैसे हो सकता है कि मिठाईका रंगरूप तो खा लिया जाय और उसका वज़न रहने दें । उसके सुगन्ध माधुर्यका तो उपभोग ले लिया जाय और उसकी लम्बाई-चौड़ाई छोड़ दें । इसीलिये भगवान्ने कहा है कि मैं सूर्यवंशमें अपने सम्पूर्ण अंशोंके साथ मनुष्यावतार धारण करूँगा । हमने देखा कि ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और कर्म ये वेदोंके चारों तत्त्व ही भारतवर्षको सगुण साकाररूपमें प्राप्त हो गये । जहाँ

निर्मल ज्ञान होगा, शुद्ध-भक्ति वहाँ अवश्यम्भावी है। और उसी प्रकार जहाँ शुद्ध वैराग्य होगा वहाँ शुद्ध कर्म जरूर ही होगा। वैराग्यमें कर्म नहीं छूटता। कर्मका राग छूटता है। उसी प्रकार ज्ञानमें भक्ति नहीं छूटती, भक्तिका दम्भ छूटता है।

आइये, हम सब वेदोंके इन चारों तत्त्वोंको एक साथ जीवनमें उतारकर दशरथजीके चारों पुत्रोंकी सच्ची आराधना-साधना करें जिससे कि हमारे देशमें सच्चा रामराज्य आ जाय। हम आज नाम तो रामका लेते हैं और काम हरामका करते हैं। आज हमारा शत्रुघ्न भरतके अनुशासनमें नहीं चलता। आज हमारा लक्ष्मण रामको भूल गया है। इसीलिये कहींपर भी सीताके दर्शन नहीं होते। सीताके समान शान्ति हमें तभी मिलेगी जब हमारी भक्ति और कर्म ज्ञान-वैराग्यके अनुशासनमें रहेंगे। और हमारे ज्ञान-वैराग्य भक्ति-कर्मको अपने साथ बनाये रक्खेंगे। ईश्वर करे! हम अपने अन्तःकरणचतुष्टयको वेदोंके इन चारों तत्त्वोंसे परिपूर्ण बना लें जिससे कि हमारा मन रामको ओर लक्ष्य करके सच्चा लक्ष्मण बने और हमारी बुद्धि तरह-तरहके विकृत प्रलोभनोंमें न फँसकर भरतके समान वैराग्यकी ओर बढ़े। हमारा चित्त रामके प्रकाशसे प्रकाशित होकर सच्चा ज्ञान प्राप्त करे और हमारा अहङ्कार शत्रुघ्न बनकर अपनी सेवाओंको सबके लिये समर्पित करे। तभी हम सब तरहसे स्वस्थ, सुखी और शान्त बन सकेंगे। दुनियामें शान्तिस्थापनाका सामर्थ्य वेदोंके इन चार तत्त्वोंकी प्रतिष्ठामें ही सन्निहित है जिसको हमें प्रयत्नपूर्वक जाग्रत् करना पड़ेगा।

---

# रासलीलाका रहस्य

( लेखक—श्रीहबुबुर रहमान साहब )

कितने आश्चर्यकी बात है कि जो भारत-भूमि ब्रह्मविद्याका स्रोत और वेदान्तादि शास्त्रोंकी आदिप्रकाशिका है, जहाँ व्यास और पतञ्जलि-जैसे अध्यात्मवादी महात्मा सूर्य बनकर ऐसे चमके कि उनकी किरणोंकी दीप्तिसे अन्धकार-युक्त हृदयपटल भी जगमगा उठे, जहाँकी गीता कर्म करते हुए भी फलबद्ध न होनेका महत्त्वपूर्ण उपदेश दे रही है, वहींके कुछ 'भारतीय नामधारी' लोग आज विदेशी वातावरणसे प्रभावित होकर महाराज श्रीकृष्णकी रासलीलाको भी विवादग्रस्त समझने लगे हैं! मुझे इस लीलाके किसी विशिष्टरूपमें मानने या न माननेसे कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। मेरा ध्यान तो इस ओर केवल इस कारण आकृष्ट हुआ कि यदि इस प्रकारके आध्यात्मिक महत्त्वपूर्ण चमत्कारोंको केवल बाह्यदृष्टिके आधारपर 'प्राचीन रूढिवाद' या असम्भव कहकर ठुकरा दिया जाय, तो सारा अध्यात्मवाद (Spiritualism) और अनासक्तियोग ही समाप्त हो जाता है और यह प्रत्यक्षकृत निश्चित सिद्धान्त है कि बिना आध्यात्मिक आश्रय या अद्वैतानुसारिणी समताके समाजमें पारस्परिक, पूर्ण और अखण्डित सहानुभूति नहीं पैदा हो सकती और बिना इस 'अकृत्रिम सहानुभूति'के किसी भी नैतिक शैलीका अवलम्बन संसारयात्राके लिये कल्याणप्रद नहीं हो सकता, अतः न केवल अध्यात्मवादकी 'रक्षा', अपितु संसार-यात्राको 'सुखप्रद' बनानेके लिये, नैतिक दृष्टिसे भी इस विषयपर ध्यान देनेकी अत्यन्त आवश्यकता है और केवल मेरा ही नहीं, अपितु प्रत्येक प्रेम और भक्ति-मार्गी तत्त्वान्वेषीका कर्तव्य है कि वह उक्त लीलाकी आध्यात्मिकता स्फुट करनेका प्रयत्न करे। अतः हिंदुस्तानके प्रसिद्ध अध्यात्मवाद या सूफ़ीमतके प्रेमी और नीति-धुरन्धरोंकी सेवामें भी निम्नस्थ विचारावलीका अर्पण करना अयोग्य न होगा।

संस्कृत भाषामें उपमा और रूपकादि अलङ्कारोंकी अधिकता होनेके कारण किसी हदतक यह कहनेका अवसर अवश्य हो सकता है कि 'रासलीलाके श्रीकृष्ण और गोपियोंका अर्थ मनुष्य और उसकी वासनाएँ हैं, जो उसे तरह-तरहके नाच नचाया करती हैं इत्यादि..........।' इस प्रकारकी भाव-परिवृत्ति या खींचातानीसे जिन लोगोंको शान्ति हो जाती है, वे शान्त रहें; मुझे उनसे कोई सम्बन्ध नहीं; परंतु मेरे विचारमें यह प्रकरण-विरोधी व्याख्या उस जन-समुदायके लिये पर्याप्त नहीं है, जो अन्तर्निलीन भावान्वेषी और मार्मिक वस्तुका अभिलाषी है और जो व्यासजीके सीधे-सादे शब्दोंसे हटना नहीं चाहता और न इसीको माननेके लिये तैयार है कि व्यास भगवान् 'काल्पनिक कथाओंके रूप'में अपना उपदेश किया करते थे तथा जिनकी धारणा

है कि इस लीलामें यदि मनुष्यके लिये कोई महत्त्वपूर्ण विशेष उपदेश अन्तर्हित नहीं है, तो यह चीज श्रीकृष्ण-जैसे योगिराजके साथ सम्बद्ध ही कैसे हो गयी ? और न केवल उनसे सम्बद्ध हुई, प्रत्युत अबतक श्रद्धाकी दृष्टिसे देखी जाती है। इसके अतिरिक्त न केवल मेरे अपितु समस्त सहृदय संसारके अन्तस्तलमें यह अटल धारणा अङ्कित है कि कर्मकाण्ड या प्रवृत्तिमार्गके अतिरिक्त ईश्वरप्राप्तिका एक असाधारण मार्ग—भक्ति या प्रेम अर्थात् 'इश्क़ी रास्ता' भी है जिसके अग्रसर वल्लभ, तुलसी और सूर इत्यादिके चित्ताकर्षक चरित्र अबतक लोगोंके हृदयोंपर अलौकिक राज्य कर रहे हैं। अतः मैं हज़रत, मिर्ज़ामज़हर, जानजाना साहिबके निम्नलिखित सिद्धान्तानुसार मुस्लिम जनताके सामने भी स्वतन्त्रतापूर्वक उन्हींके शब्दोंमें कह सकता हूँ कि—'समस्त मार्गोंके जानकार होनेपर भी कृष्णजीकी अपनी प्रधान पद्धति मन्दिर और मस्जिदसे 'अलग' केवल 'प्रेम-पद्धति' ही थी, इस कारण प्रेम-मार्गिक असाधारण भक्तिकी अलौकिक आकर्षण-शक्ति और उसके अनिवार्य चमत्कारोंपर ध्यान देनेके पश्चात् मेरा पूर्णप्राय विचार है कि यदि वास्तविक गोपियाँ ही अपने अलौकिक प्रेमद्वारा श्रीकृष्णपर मोहित होकर रासलीलाका कारण हुई हों, तो भी किसी वादीके विवादका कोई अवसर नहीं हो सकता।'

इस संक्षिप्त भूमिकाके पश्चात् निवेदन है कि महाराज श्रीकृष्ण योगिराज थे, इस कारण उनकी 'रासलीला'का 'रहस्य' जाननेके लिये यौगिक ज्ञानसे परिचित होनेकी आवश्यकता है। इस सम्बन्धमें मुझे केवल यह कहना है कि इस बातको सभी सहृदयजन जानते हैं कि मनुष्य 'वैयक्तिक' और 'सामष्टिक' दोनों दृष्टियोंका स्रोत है और यही कारण है कि इसके आचरण और सङ्कल्पोंमें भी इन दोनों दृष्टियोंकी पूरी झलक दिखायी देती है। कौन नहीं जानता कि जब मनुष्यपर वैयक्तिकता या अत्यन्त स्वार्थपरताका भूत सवार हो जाता है, तब अपने लाभके लिये उस पुत्रतकके प्राणान्तके लिये तैयार हो जाता है, जिसे उसने अपना ही रक्त और पसीना एक करके स्वयं ही पाला और पोसा था। इसके विपरीत कभी दूध पीते, किसी दूसरेके भी बुभुक्षित और तृषित बालकको दुःखसे बिलबिलाता देख, उसी मनुष्यका हृदय विदीर्ण हो जाता है। 'उसकी भूख' 'इसकी भूख' और 'उसकी प्यास' 'इसकी प्यास' हो जाती है। और इस समानता और ऐक्यके उमड़े हुए स्रोतमें वैयक्तिक भित्तियाँ कम्पायमान और स्खलितप्राय हो जाती हैं; यहाँतक कि वही अपने पुत्रके प्राणान्तका इच्छुक मनुष्य, उस विपत्तिग्रस्त दुःखित बालकके सुखके लिये, उस द्रव्यके व्यय करनेमें भी कोई कमी नहीं करता, जिसके लिये स्वयं अपने ही अंश-स्वरूप पुत्रसे लड़नेके लिये तैयार हो गया था। सारांश यह कि अपनेको 'अन्य' मानकर दुत्कारने और अन्यको अपना समझकर गले लगानेकी लालसा मानुषी प्रकृतिमें विद्यमान है। स्फुट है कि इनमेंसे पहलीका 'स्रोत' वैयक्तिक दृष्टि या स्वार्थपरता है और दूसरेका 'आधार' वह सर्वव्यापी आन्तरिक 'अहंभाव' का 'अन्तर्निहित ज्ञान' है, जिसकी प्रेरणासे मनुष्य समय-समयपर दूसरोंपर बलि-प्रदान होता हुआ दिखायी देता है। बस, इन दोनों दृष्टियोंमेंसे सामान्यजन तो पहलीहीको अभीष्ट समझकर उसीपर टिक जाते हैं, परंतु योगी या सूफ़ी इस स्वप्नवत् वैयक्तिकतासे उन्नत हो जाता है और उस जाग्रत् अवस्थाका अनुभव करता है जहाँ यह वैयक्तिकता आत्मस्वरूपमें लय होकर अलक्षित हो जाती है। इस सारे लेखका अभिप्राय यह है कि योगी या वलीकी स्थिति सामान्य धार्मिकोंसे भिन्न हो जाती है। गीता भी कहती है—'सर्वत्र समदर्शी योगी सर्वभूतोंमें अपनेको और अपनेमें सर्वभूतोंको स्थित देखता है' इत्यादि। गीताका यह और दूसरे श्लोक स्पष्ट रीतिसे स्फुट कर देते हैं कि योगकी अवस्था सर्वसाधारणसे प्रतिकूल हो जाती है। इस अवस्था-विशेषके विवरणके अनन्तर, अब मैं रासलीलाकी शाब्दिक और मर्मस्पर्शी विवेचनाको भी आवश्यक समझता हूँ, जिससे हिंदू-शास्त्रानुसार उसका वास्तविक अर्थ श्रीकृष्णभक्तोंके सामने स्फुट हो जाय। इस सम्बन्धमें निवेदन है कि हमारे भ्रातृगणोंका अपने धार्मिक ग्रन्थोंके आधारपर यह सिद्धान्त है कि उक्त लीलाके दर्शन, पठन और श्रवणादिसे निर्वाण अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है तथा उनका प्राचीन साहित्य यह भी उपदेश करता है कि मोक्ष वस्तुतः काल्पनिक—सांसारिक प्रपञ्चसे छूटकर ब्रह्ममें लीन हो जानेका नाम है और उसकी प्राप्ति ब्रह्मज्ञानके बिना सम्भव नहीं। इन विचारोंके अस्तित्वमें प्रत्येक तत्त्वान्वेषीका कर्तव्य है कि वह रासलीलाके ऐसे 'अर्थ' की अन्वेषणा करे जिसमें उपर्युक्त मोक्षादि विचारोंके साथ-साथ चलनेकी पूरी सामर्थ्य और योग्यता विद्यमान हो। इस कार्यके लिये सबसे प्रथम अवतारवादके सिद्धान्तपर ध्यान

१. सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
(गीता ६। २९)

देनेकी आवश्यकता है। अतः संक्षेपतः निवेदन है कि प्राचीन आर्य-तत्त्वान्वेषियोंने ईश्वरावतारको निम्नरीतिसे समझा है—

उस जगदाधार ब्रह्मकी शक्तियाँ जड और चेतन हर एकमें अपना प्रकाश करती हैं; इनकी पारस्परिक मात्रा या न्यूनाधिक्य समझनेके लिये इनकी सोलह कलाएँ ( दर्जे ) मानी गयी हैं; इसके साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि इस लौकिक सृष्टिमें ईश्वरीय कलाओंमेंसे एकसे लेकर आठतक ही सामान्य जनोंमें प्रकट हो सकती हैं। इसके पश्चात् अवतारकी भूमि आ जाती है, जहाँपर सामान्य जीवकी पहुँच नहीं हो सकती। निष्कर्ष यह है कि नवींसे लेकर सोलहवींतक जितनी भी कलाएँ किसी पुनीत सत्तामें आविर्भूत होती हैं उसको पारिभाषिक भाषामें अवतार, ईश्वर या ब्रह्मांश कहा जाता है। अवतारकी इस विवेचना और रासलीलाकी उपर्युक्त मोक्षसम्बन्धी अन्वेषणाका ध्यान रखते हुए इस लीलाकी शाब्दिक समीक्षा निम्नरीतिसे होनी चाहिये—

'रास-लीला' शब्द मिश्रित है रास और लीलासे, पहला शब्द 'रास' रस शब्दसे 'तस्येदम्' सूत्रसे 'इदमर्थ'में 'अण्' प्रत्यय करनेसे बनता है और तैत्तिरीय उपनिषद्के वाक्य—'रस[1] ब्रह्म है' के अनुसार 'रस' शब्दका अर्थ 'ब्रह्म' है; अतः रास शब्दका अर्थ हुआ ब्रह्मका 'पूर्णकलात्मक औपाधिक प्रादुर्भाव' और यह प्रादुर्भाव प्रधानतया महाराज श्रीकृष्णहीमें विद्यमान था; इसी कारण रास शब्दका वास्तविक 'अर्थ' औपाधिक पूर्ण ब्रह्म अर्थात् महाराज श्रीकृष्ण ही हैं। अब उस शब्दके द्वितीय अंश 'लीला' शब्दपर ध्यान दीजिये, 'लीला' शब्द भी 'ली' और 'ला' से मिश्रित है। 'ली' धातुका अर्थ 'लय' होना और 'ला' का अर्थ है 'लेना'। दोनों शब्दोंका पूर्ण अर्थ—'लियं लातीति लीला' अर्थात् तन्मयता या तद्रूपता प्राप्त करानेवाली 'क्रिया-विशेष' हुआ और 'रासलीला' शब्दका प्रसङ्गयुक्त अर्थ हुआ पूर्णावतार महाराज श्रीकृष्णमें लय करानेवाली क्रिया अथवा 'योगात्मक चमत्कारविशेष'। सारांश यह कि इसी रासलीलाके द्वारा लीलात्मक-कृष्ण-रूपधारी ब्रह्मने व्रजाङ्गनाओंको आत्मस्वरूपमें लय करके परमपदतक पहुँचा दिया।

गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रमें ध्यानावस्थित होकर तल्लीनतातक कैसे पहुँचीं, इसका विवरण निम्नलेखानुसार है—

पुराणग्रन्थोंके अवलोकनसे ज्ञात होता है कि श्रीकृष्णके साथ गोपियोंका प्रेम उच्चकोटिक पूर्णासक्ति या प्रेमकी अन्तिम अवस्थातक पहुँच गया था और इस अवस्थाका अनिवार्य परिणाम यह है कि प्रेमीका चित्त प्रियतमके अतिरिक्त अन्य समस्त सांसारिक वासनाओं ( चित्तवृत्तियों ) से शून्य होकर सर्वथा उसीमें समा जाय; क्योंकि पूर्णासक्तिका अभिप्राय ही यह है कि प्रेमीके चित्तमें अपने अभीष्टकी प्राप्तिके लिये पूर्ण अभिलाषा अर्थात् आकाङ्क्षा उत्पन्न हो जाय और आकाङ्क्षा उस समयतक पूर्ण नहीं कही जा सकती, जबतक कि चित्त पूर्णरूपसे एकाग्र होकर अपनी सम्पूर्ण ध्यान-शक्ति केवल एक ही ध्येयमें न लगा दे; और जब चित्तका पूर्ण ध्यान एक ही ध्येयमें लग गया, तब फिर उसमें उस प्रियतमके अतिरिक्त और किसी पदार्थका स्थान ही कहाँ रह गया ! अतः यह नितान्त सत्य है कि पूर्णानुरागमें प्रेमीका चित्त प्रियतमके अतिरिक्त समस्त सांसारिक वृत्तियोंसे सर्वथा शून्य हो जाता है। महामना भवभूति भी मालतीके विरहमें माधवकी अवस्थाको चित्रित करते हुए तन्मयताहीका दृश्य प्रदर्शित कर रहे हैं—

'मैं[1] उस ( मालती ) को इधर-उधर, आगे-पीछे, भीतर-बाहर और चारों ओर देख रहा हूँ, उस अवस्थामें जब कि विकसित मुग्ध स्वर्ण-कमलके सदृश उसके आनन्दमें स्थित आँखें मेरी आसक्तिवश ( मुझे देखनेके लिये ) तिरछी हो गयी थीं।'

और यही भाव अरबीके इस वाक्यका[2] है कि पूर्णासक्ति एक देदीप्यमान अग्नि है, जो प्रियतमके अतिरिक्त अन्य समस्त पदार्थोंको भस्म कर देती है।

योगदर्शन[3] भी कहता है कि जिस तरह बिल्लौर मणि अपने समीप स्थित वस्तुसे प्रभावित होकर उसीके रंग-रूपमें रँग जाती है, उसी तरह वह चित्त, जो संसार और तद्गत-पदार्थोंसे शून्य होकर स्वच्छ हो जाता है, जिस वस्तुकी ओर ध्यान देता है उसीके रूपमें ढल जाता है। फ़ारसी-साहित्यमें भी इसी अवस्थाका चित्र चित्रित है—'जब[4] मैं सिरसे पैरतक तेरी अभिलाषामें खुद ही व्यय हो गया, तब कुछ अवशिष्ट ही नहीं रहा जिसकी अभिलाषा करूँ।'

१. रसो वै सः।

१. पश्यामि तामित इतः पुरतश्च पश्चा-
दन्तर्बहिः परित एव विवर्तमानाम्।
उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभं वहन्ती-
मासक्तितिर्यगपवर्तितदृष्टि वक्त्रम्॥

२. अल्इश्को नारुन्, यहरूको मासिवल्महबूब।

३. क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता-समापत्तिः। ( १। ४१ )

४. चूँ मन्ज़े सरतापाय ख़ुद सरफ़े तमन्नायत
शुदम् हेचम् नमांदा ताज़नम् हर्फ़े तमन्नाये दिगर॥

इस पूर्ण एकाग्रता या सामाधिक संसारमें जब प्रियतम और प्रेमीके बीचका पर्दा उठ जाता है, तब प्रेमी 'वह प्रेमी' और प्रियतम 'वह प्रियतम' नहीं रहता । उस समयकी अवस्था वाक्शक्तिसे परे हो जाती है । उर्दू-साहित्यकी भावना भी इस सम्बन्धमें अपना यही विचार प्रदर्शित कर रही है—

'कहूँ क्या कि खिल्वते खासमें जो हिजाब बीचसे उठ गया ।
न वह तुम रहे, न वह हम रहे, जो रही सो बेखबरी रही ॥

इस पद्यके उत्तरार्धसे प्रकट होता है कि उच्चकोटिक प्रेमीका आन्तरिक ध्येय वास्तवमें प्रियतमका अस्थिपिञ्जररूपी कलेवर नहीं होता, अपितु उसकी दृष्टिका अन्तिम और आभ्यन्तरीय केन्द्र 'ऐसे' और 'वैसे'की सीमासे बाहर—वह मूक कर देनेवाली—अलौकिक और प्रकाशात्मक छटा होती है जिसके आविर्भावकी ओर पद्यके उत्तरार्ध—'न वह तुम रहे, न वह हम रहे' में परामर्श किया गया है; और स्फुट है कि यह वही अखण्ड सौन्दर्य-सूर्य है, जिसकी किरणोंसे समस्त सांसारिक चन्द्रवदनोंके आनन चमक रहे हैं और जो सबसे परे और निर्लिप्त होनेपर भी सबको प्रकाशित कर रहा है । जैसा कि श्रुति भी कहती है कि [1]यह सब ( जगत् ) उसीके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा है अपि च [2]यही उस ( ईश्वर ) का परम आनन्द है । अन्य सर्वभूत इसी आनन्दकी आंशिक मात्रासे जीवित रहते हैं । उर्दू-कविताके चमकीले मोतियोंमें भी इसी श्रुति-सिद्धान्तकी रोशनी जगमगा रही है। यथा—

'उसीकी शोखी[3] शरारमें[4] है, उसीकी गर्मी चुनार[5] में है ।
वह आब[6] हर सब्जाजारमें[7] है, वह लाला[8] हर कोहिसार[9] में है ॥'

अनुरागके इसी पवित्र, भौतिक वासनारहित उच्चकोटिक-पदके लिये अरबी-साहित्यका वाक्य है—'अनुराग तो ब्रह्मप्राप्तिकारक एक अग्नि है ।'[10] कुछ लोगोंने एक पग और आगे बढ़ाया और बोल उठे—'इश्क़ अर्थात् अनुराग तो वही अल्लाह है, वही अल्लाह वही अल्लाह'[10] और यही अनुरागरागिनी पाश्चात्य कवियोंने इस प्रकार गायी है कि 'अनुराग ब्रह्म है'[11] और 'ब्रह्म' अनुराग । उपर्युक्त सहृदय तत्त्वदर्शियोंके अनुभवके अतिरिक्त प्रियतम और प्रेमीकी उक्त एकरूपताका रहस्य हर व्यक्ति खुद अपनी ही सत्तामें देख सकता है । मेरा अभिप्राय यह है कि सांसारिक जीव, शारीरिक वासनाधार अपनी 'देह' पर आसक्त होकर उससे ऐसा संसक्त हो गया, जैसा कि बीजोत्पन्न वृक्ष, कलमी वृक्षसे 'बँध' जाता है और जीव भी, उसी तरह शारीरिक रंग-रूप और गुणोंमें डूबकर शरीर हो गया है, जैसे कि बीजोत्पन्न या कटा पेड़ कलमी पौधेसे बँधकर 'कलमी' हो जाता है । तार्किक जनोंके लिये विशिष्ट विवरण यह है कि प्रायः समस्त धर्मों और तत्त्वदर्शी विद्वानोंने जीवात्माको अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात् एक 'निराकार' और 'अभौतिक' द्रव्य माना है और वर्तमान प्रत्यक्षवादी भौतिक विज्ञानने यह भी सिद्ध कर दिया है कि जो वस्तु जितनी अधिक सूक्ष्म होती है, उसमें उतनी ही अधिक विचित्र शक्ति भी होती है जैसा कि वायु, वाष्प, अग्नि और विद्युत् इत्यादि सूक्ष्म-वस्तुओंके आश्चर्यजनक विकासोंसे दिन प्रतिदिन प्रकटित होता रहता है । अतः सबसे अधिक और अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात् अभौतिक जीवात्मामें शक्ति भी आत्यन्तिकी ही होनी चाहिये, फिर क्या कारण कि किसी एक भी जीवधारी व्यक्तिमें उस आत्यन्तिकी शक्तिके दर्शन नहीं होते ? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नका उत्तर उस समयतक नहीं हो सकता जबतक कि देह और जीवकी प्रेमात्मक पूर्ण एकता स्वीकार न कर ली जाय । अतः देह और जीवकी निम्नाङ्कित प्रेम-कहानियोंपर ध्यान दीजिये—

विशुद्धानुरागके पारङ्गत अनुरागियों और सहृदय तत्त्वदर्शियोंने देखा है कि पूर्णानुरागमें ध्यानोद्रेकके कारण प्रेमी प्रियतममें लीन होकर नितान्त तद्रूप हो जाता है । न केवल उसमें प्रियतमके गुण ही आ जाते हैं अपि तु दोनोंके बीचसे भेदोत्पादक कल्पित पर्दा उठ जाता है और अवस्था विशेषमें उनकी आकृतितक एक-सी दिखायी देने लगती है । इस विषयमें शास्त्रीय प्रमाणान्वेषीजन गर्गसंहितालिखित यह रहस्यमयी घटना पढ़ सकते हैं कि गर्म दूध तो पियें राधिकाजी और छाले पड़ें महाराज श्रीकृष्णके चरणोंमें । इसी तरह भृङ्गी-कीटका दूसरे कीड़ेको पकड़कर भयजनित ध्यानद्वारा अपना-सा बना लेना भी उक्त तद्रूपताहीका पोषक है । निष्कर्ष यह कि मनुष्य-जन्म या देहको सबसे 'अधिक श्रेष्ठ' केवल इस कारण माना गया है कि इसके द्वारा पुण्यकर्म करके मनुष्य अपने अभीष्ट ध्येय अर्थात् परमपद तक पहुँच जाता है और यह अटल नियम है कि जिस पदार्थसे किसीकी कामनापूर्ति

---

१. तस्यैव भासा सर्वमिदं विभाति ।

२. एषोऽस्य परमानन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति । ( बृहदारण्यकोपनिषद् )

३. चञ्चलता, ४. स्फुलिङ्ग, ५. औषधनामी लताविशेष जो रात्रिमें अग्निकी तरह चमकती है, ६. पानी, ७. हरित-स्थली, ८. पुष्पविशेष, ९. पर्वतप्रदेश ।

१०. अल्इश्क़ो नारुन् यासिलुन्फ़ीज़ाते रब्बिल्आलमी अल्इश्क़ो हुवल्लाहो हुवल्लाहो हुवल्लाह ।

११. God is love love is God.

या लाभ होता है, उससे उसका प्रेम हो जाता है। अतः अपनी पदोन्नतिका अभिलाषी 'जीव' शरीरका प्रेमी बन गया; कारण कि उसीके द्वारा कर्म करके वह उन्नत हो सकता था। बस, उसका यह प्रेम पूर्णानुरागके उस दर्जेपर पहुँच गया, जहाँ प्रेमी और प्रियतम 'दो' नहीं रहते। यही कारण है कि चोट तो लगती है शरीरके और व्यथित होकर 'हाय' करता है जीव। ठीक उसी तरह कि गर्म दूध तो पियें राधिकाजी और छाले पड़ें कृष्णजीके; या यह कि फ़स्द तो खोली गयी मजनूँके और खून निकला कलेवर-लैलासे; यह इसलिये कि दोनोंके मध्यसे भेद-भाव उठ गया था, जैसा कि निम्नलिखित पद्यसे भी सिद्ध होता है—

अजीब इश्कका दोनों तरफ असर फैला।
वह कह रही थी अनाल्कैस वह अना लैला॥

इसके विपरीत यदि देह और जीवमें उपर्युक्त प्रेमात्मक एकता न मानी जाय तो फिर शरीरके दुःखसे जीवका 'हाय' करना तो एक ओर, शरीर और शारीरिक ( जीव ) का सम्बन्ध ही असम्भव हो जायगा; क्योंकि शरीर साकार, जीव निराकार; शरीर जड और जीव चेतनादि विरोधी गुणोंसे विशिष्ट है। भला कभी विरोधी पदार्थ भी बिना स्वार्थ परस्पर दृढ़ संसक्त होकर एक हो सकते हैं, जैसे कि देह और जीव ? अतः स्पष्ट हो गया कि दैहिक प्रेमोद्रेकमें जीव उसी तरह स्वगुण-विरक्त होकर देह हो गया है, जैसे कि कलमी पौधेसे बँधकर 'कटा पेड़' भी कलमी हो जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्तिमें उपर्युक्त जीवकी आत्यन्तिकी शक्ति दिखायी नहीं देती अपि तु साधारणतया दैहिक और भौतिक शक्तिहीके दर्शन होते हैं। परंतु जो व्यक्ति योगक्रियाद्वारा शरीरानन्दसे निकलकर 'आत्मानन्द' में डूब जाता है, वह जीवात्मासे 'पूर्णात्मा' होकर अपनी 'अन्तर्निलीन' अलौकिक शक्ति पुनः प्राप्त कर लेता है और उसीसे समय-समयपर योगकी उन चमत्कारात्मक सिद्धियोंका आविर्भाव होने लगता है जिनका विवरण योगदर्शन-जैसे दर्शन ग्रन्थके विभूतिपादमें सविस्तर विद्यमान है। और यदि मनुष्यके जीवमें उपर्युक्त अलौकिक शक्ति पहलेसे मौजूद मानी ही न जाय, तो अब कहाँसे आकर उक्त चमत्कारकारिणी हो जाती और विभूतिपादका निर्माण भी कैसे युक्तिसङ्गत हो सकता ? इस स्थानपर यह विचार उत्थित होना सही नहीं कि पूर्णानुरागमें हर प्रेमी अपने प्रियमें लीन होकर ईश्वर-प्राप्ति या परमपदतक पहुँच जाता है; क्योंकि यह पदवी उसीकी है जो शारीरिक सीमासे परे अलौकिक निराकार समुद्रमें मग्न हो चुका है। अर्थात् जिसकी आँखने साकारके मूलमें भी निराकारका ही रहस्यमय नाटक देखा है या यह कि गोपियोंकी भाँति जिसकी लव किसी ऐसे योगेश्वर या पूर्णावतारसे लगी हो, जिसके शरीरसे भी सूर्यकान्तमणिकी तरह रूपादि शारीरिक सम्पर्क-शून्य, लोक-प्रकाशक, अलौकिक भुवन-भास्करकी किरणें निकल रही हों, और स्फुट है कि हर प्रेमीका प्रेम ऐसी सत्तासे नहीं होता। इसलिये जो व्यक्ति किसी अध्यात्मविरोधी, आहङ्कारिक, वासनारत, 'दुर्गुण-समुदायाधार-कलेवर'से प्रेम करके उसके शरीरहीको अपना वास्तविक ध्येय बनायेगा, उसमें भी अनिवार्यतया उसके वह दुर्गुण ही सन्निविष्ट हो जायँगे और स्पष्ट है कि इन दुर्गुणोंको ईश्वरप्राप्तिसे क्या सम्बन्ध ?

गोपियों और श्रीकृष्णके प्रेम-सम्बन्धमें मुझे यह और निवेदन करना है कि यह तो सब जानते हैं कि गोपियोंका श्रीकृष्णसे प्रेम था। पर प्रश्न यह है कि वह श्रीकृष्णको क्या देखती थीं ? इसका उत्तर स्वयं उन्हींके श्रीमुखसे श्रवण कीजिये—'[1]यह निश्चित है कि आप यशोदाके ही पुत्र नहीं हैं, प्रत्युत आप तो समस्त जीवोंमें अन्तरात्माके साक्षी—देखनेवाले हैं।' गोपियोंके इस वाक्यसे सिद्ध होता है कि वे श्रीकृष्णको वही सर्वव्यापी परमात्मा या 'वास्तविक सत्ता' समझती थीं जिसकी व्याख्यासे गीताके अध्याय परिपूर्ण हो रहे हैं।

यहाँ यह प्रश्न अवश्य हो सकता है कि जब गोपियाँ असीम और अपरिमित निराकार ज्योतिसे परिचित हो चुकी थीं, तब फिर कृष्णकलेवरकी खोजमें जंगलोंकी खाक छानने-का क्या प्रयोजन था ? इसका उत्तर यह है कि श्रीकृष्णकी 'सामष्टिक' और अपरिमित आत्मसत्तासे आँख लड़ते ही उनकी आँखोंमें कुछ ऐसी सामष्टिक और व्यापक अभेदता समा गयी कि वह साकारमें निराकार और निराकारमें साकारका तमाशा देखने लगी थीं। इसके अतिरिक्त व्यापक और निराकारात्मक खिड़की खुल जानेपर भी इस संसारमें प्रायः शारीरिकताका ही अधिकार रहता है। कारण कि स्थिरतामूलक निरन्तर अर्थात् लगातार दर्शन शरीरका ही हो सकता है और यही कारण है कि प्रायः निर्गुणाभिलाषियोंने भी निराकारतापर पूरा काबू न पाकर इस दृश्यमान शरीरको ही तत्त्वज्ञताका जीना बनाया है जैसा कि किसी प्रेममार्गी महात्माको किसी सौन्दर्यमय-

१. मैं मजनूँ हूँ। २. मैं लैला हूँ।

१. न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।

आननके दर्शनमें निमग्न देखकर किसी स्थूलदर्शी कर्मकाण्डीने प्रश्न किया कि, 'यह क्या है ?' उत्तर मिला कि 'भुवन-भास्करका 'विम्ब' देख रहा हूँ परंतु पानीकी थालीमें ।' अब किञ्चिन्मात्र इस ओर भी ध्यान देनेकी आवश्यकता है कि गोपियोंका उक्त प्रेम कोई सामान्य प्रेम नहीं था, प्रत्युत उसके अन्तस्तलमें योगके पवित्र और उच्चतम नियम स्वयं अपना कार्य सम्पादन कर रहे थे। देखिये चित्तमें[2] आनेवाली वृत्तियों अर्थात् 'खयालों' के रोकनेको योगदर्शनमें योग कहा गया है, और इन वृत्तियोंको रोकनेकी दो[3] युक्तियाँ बतायी गयी हैं। प्रथम—सांसारिक पदार्थोंकी सतर्क अस्थिरता और अवास्त-विकता देखकर उनसे चित्तका विरक्त और 'विपरीत' हो जाना। द्वितीय—जिस प्रेरणाने इन पदार्थोंसे चित्तको उदासीन कर दिया है, उससे दृढ़ सम्पर्ककारक साधनोंका निरन्तर प्रयोग करना अर्थात् ध्येयके ध्यानमें मग्न हो जानेका 'अभ्यास'। उक्त साधनोंमेंसे महाराज पतञ्जलिने अभीष्ट पदार्थके ध्यान[4] और सांसारिक वासनाओंसे[5] विरक्त किसी पूर्णात्माके चित्तसे सम्पर्कका भी वर्णन किया है, अपिच यह भी कहा है कि—जिसे तीव्र[6] संवेग अर्थात् योगकी धुन होती है, उसको योगमें शीघ्र सफलता होती है। एवं एकाग्रता[7] अर्थात् एक ही खयालमें निमग्नताको बीमारी, सुस्ती और अधीरता इत्यादि योगविरोधी पदार्थोंका प्रतिबन्धक सिद्ध किया गया है। ध्यानद्वारा, किसी विशेष पदार्थ या प्रदेशमें चित्तके[8] बाँधने अर्थात् लगानेको 'धारणा' कहते हैं। यही धारणा[9] जब निरन्तर और लगाताररूपसे होने लगती है तो उसका नाम ध्यान हो जाता है और जब ध्यानी अपने ध्येयमें पूर्ण मग्नता द्वारा ध्येयस्वरूप होकर स्थित हो जाता[10] है, तब यह अवस्था योग-की अन्तिम कक्षा अर्थात् समाधि कहलाती है। अब योगके इन मौलिक नियमोंको ध्यानमें रखते हुए गोपियोंकी प्रेमावस्थापर दृष्टि डालिये तो विदित हो जायगा कि ये समस्त नियम उनके 'प्रेम-योग' में बिना किसी प्रयत्नके स्वयं ही विद्यमान हो रहे थे। अतः कोई कारण नहीं कि गोपियोंके हृदयमें दुनियासे पूर्ण उदासीनता मानकर, उनको सम्पूर्ण वैराग्यवती न स्वीकार किया जाय तथा श्रीमद्भागवतके अवलोकन-से ज्ञात होता[11] है कि श्रीकृष्णजीका तनिक सम्पर्क भी गोपियोंके चित्तसे इतर-समस्त वासनाओंको विस्मृत करा चुका था, जो पूर्ण-वैराग्यका प्रकाशमान प्रमाण है।

द्वितीय वस्तु अर्थात् अभीष्ट पदार्थके ध्यानका 'अभ्यास' तो इस सम्बन्धमें पूर्ण प्रेमीके लिये कुछ कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। कारण कि प्रेमीसे अधिक प्रियतमके ध्यानमें कौन मग्न हो सकता है ? अब रहा अभीष्ट पदार्थका ध्यान और पूर्णात्मा-वीतरागविषयकसे गाढ़तर सम्बन्ध, तो इन दोनों साधनोंकी पूर्ति तो गोपियोंने श्रीकृष्णके ध्यानद्वारा ही कर ली थी, क्योंकि श्रीकृष्ण गोपियोंके अभीष्ट ध्येय भी थे और योगेश्वर होनेके कारण पूर्ण वैराग्यकी मूर्ति भी। अब अवशिष्ट रही तल्लीनता या निमग्नता, सो वह अनुरागीसे बढ़कर और किसीमें हो ही नहीं सकती और गोपियोंका केवल श्रीकृष्णके ही ध्यानमें प्रधानतया मग्न रहना; योगविघ्नोंकी निवृत्तिके लिये भी पर्याप्त था 'तुमहीमें[12] 'असु' अर्थात् चित्त रखनेवाली गोपियाँ' इस गोपीगीतसे स्पष्टतया यह भी विदित हो जाता है कि गोपियोंने श्रीकृष्णमें 'चित्त' लगाकर 'धारणा' नामक योगके दर्जेको[13] भी प्राप्त कर लिया था। कारण कि 'असु' शब्दका अर्थ चित्त भी है और चित्तको किसी स्थान या वस्तुमें रखना अर्थात् बाँध देना ही धारणा है और यही धारणा उन्नत होकर ध्यान और ध्यानसे उच्च होकर 'समाधि' हो जाती है; फिर क्या कारण कि सांसारिक वासनाओंसे उदासीन गोपियाँ, इस प्रेम-योगकी पूर्ति करनेपर भी श्रीकृष्णमें लीन होकर परमपदतक न पहुँचें ? यह है गोपियोंकी तात्त्विक धर्मपरायणता, निष्कपट प्रेम और उनकी ब्रह्मलीनताकी व्याख्या और यही मूल है उस अनुरागात्मक चमत्कारकी, जिसको दुनिया आजतक रासलीलाके नामसे याद करती है।

( लेखक महोदयके लंबे लेखको स्थानाभावसे कुछ छोटा कर दिया गया है। इसके लिये वे कृपया क्षमा करें। सम्पादक )

---

१. चश्मये आफ्ताबरा बीनम्, लेकदरतश्तेआबर्माबीनम्॥ २. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (यो० १।२)। ३. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः (यो० १।१२)। ४. यथाभिमतध्यानाद्वा (यो० १।३९)। ५. वीतरागविषयं वा चित्तम् (यो० १।३७)। ६. तीव्रसंवेगानामासन्नः (यो० १।२१)। ७. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः (यो० १।३२)। ८. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (यो० ३।१)। ९. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (यो० ३।२)। १०. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः (यो० ३।३)। ११. इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥ (श्रीमद्भा० १०।३१।१४)। १२. त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते (श्रीमद्भा० १० ३१।१)। १३. शब्दार्थचिन्तामणि (पृ० २२६)।

# दूसरोंके हृदयको जीतनेका उपाय

( लेखक—श्रीशिवकण्ठलालजी शुक्ल 'सरस' एम्० ए० )

प्रायः यह देखनेमें आता है कि जब हम दूसरोंको अपनी विचारधारामें बहाना चाहते हैं या उनकी राय बदलना चाहते हैं, तब बुद्धितत्त्वके आधारपर तर्क-वितर्कका अधिक सहारा लेते हैं । मानव-मनकी भावनाओं और अनुभूतियोंकी लेशमात्र भी चिन्ता न करके तर्कशास्त्रके शुष्क धरातलपर उतर आते हैं । इस बातपर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता कि भावनाओं और अनुभूतियोंका क्या स्थान है । सीधे अनावश्यक वाद-विवादको छेड़ देते हैं । अपने दृष्टिकोणको सरल, स्पष्ट, मधुर और हृदयग्राही बनानेकी अपेक्षा हम दूसरोंके दृष्टिकोणकी कटु आलोचना करने लगते हैं । हमें चाहिये कि हम अपने विचारोंकी व्याख्या, उनकी उपयोगिता तथा उससे अन्य लोगोंके सम्बन्ध आदि बातोंको आकर्षक ढंगसे रक्खें । पर हम ऐसा न करके दूसरोंके विचारोंपर ही अनुचित ढंगसे प्रहार करना प्रारम्भ कर देते हैं । विचारोंकी झोंकमें गँवारू ढंगसे कह उठते हैं कि वह गुमराह है । इस प्रकार उसके आत्मसम्मान और आत्मगौरवकी भावनाओंपर कठोर प्रहार करने लगते हैं । जिससे शीघ्र ही द्वेषपूर्ण घृणा उत्पन्न हो जाती है और आपसमें अनुचित और तीक्ष्ण शब्दोंका आदान-प्रदान होने लगता है । इस प्रकार न तो हम दूसरोंके दृष्टिकोणको बदल पाते और न उनको अपना मित्र ही बना पाते । वरं उनके पूर्व विचारोंको और दृढ़ करके उन्हें अपना शत्रु बना लेते हैं ।

इस प्रकारकी असफलताका कारण स्पष्ट है । मूल कारण यह है कि हम यह बिल्कुल भूल जाते हैं कि मनुष्य तर्कशास्त्रकी सृष्टि नहीं है । मनुष्य अनुभूतियों और भावनाओं, विचारों और इच्छाओं, द्वेष और घृणा, अभिमान और अहंभाव, भय और आदर, शक्ति और सम्मानका अनुगामी है । वह तर्कशास्त्रके वशीभूत कभी नहीं हो सकता । हमें सदैव ध्यान रखना चाहिये कि वे लोग मनुष्य हैं, देवता नहीं हैं । उनके विचार और भावनाएँ शिलाखण्डपर लिखे अक्षर नहीं हैं । हममेंसे प्रत्येक अपनेको बुद्धिमान्, विचारवान् तथा तर्कशास्त्री होनेका दावा करता है और उसीके अनुसार प्रयत्न भी करता है; परंतु जब वही बात प्रत्यक्ष अनुभवमें आती है, तब हमें ज्ञात होता है कि हमारे प्रदर्शनमें बुद्धितत्त्वकी अपेक्षा पूर्व निर्मित धारणाएँ तथा कल्पनाएँ अधिक कार्य करती हैं । तर्कना हमारे साथ कार्य करनेमें असमर्थ सिद्ध होती है ।

तर्क-वितर्कसे विजय कम होती है । वह अधिकतर व्यर्थ सिद्ध होता है । यदि कभी विजय भी हो जाय तो वह विजय पराजयसे भी गयी-बीती होगी । मान लिया कि हमने किसीको अपने तर्क-बलसे कोई बात मनवा दी और उसने स्वीकार भी कर ली । पर विश्वास रखना चाहिये कि यह उसकी मान्यता बाहरी तथा क्षणस्थायी है । उसके विचारोंमें कोई स्थायी परिवर्तन नहीं हो सकता । वह हमारी आश्चर्यजनक प्रभावशालिनी तर्कनाके सामने ठहर न सके, वचनबद्ध भी हो जाय और आत्मसमर्पण भी कर दे । यह सब कुछ होनेपर भी हृदय अपनी पूर्वदशामें ही बना रह सकता है । इससे हृदय नहीं बदल सकता ।

यह स्वाभाविक बात है कि हम उन्हीं बातोंमें विश्वास करना अधिक पसंद करते हैं, जिनमें बहुत पहलेसे विश्वास करते आ रहे हैं । हम इस बातकी बहुत कम परवा करते हैं कि हमारा विश्वास तर्कपूर्ण है या तर्कहीन । मानव-मन अपनी स्मृतियोंसे स्नेह करता है । जो विचार हमारे मस्तिष्कमें घर कर चुके हैं, उनके प्रति सम्मानकी भावना अवश्य बढ़ती जाती है । उन विचारोंसे हमें ममता और मोह होता है । अतः उनका अपहरण हमारे लिये असह्य होता है । जब हमें यह ज्ञात होता है कि कोई व्यक्ति हमें लूटना चाहता है, तब हृदय व्याकुल हो उठता है । हम यह कभी भी सुननेको तैयार नहीं होंगे कि हमारे विचार निरर्थक हैं । जब कोई हमारे विचारोंपर प्रहार करना चाहता है, तब हम पूर्ण शक्तिके साथ उनकी रक्षा करते हैं । दूसरोंके द्वारा जितना ही इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि हमारे विचार ठीक नहीं हैं, उतना ही हम अपने विश्वासोंमें दृढ़ होते जाते हैं । यही है मानव-स्वभाव । यह बात हमारे साथ, आपके साथ और सबके साथ है । तर्क-वितर्क, खण्डन-मण्डनसे भेदभाव अधिक बढ़ता है । इसमें घृणाके कारण ऐसा अन्तर पड़ जाता है कि उसको भरना कठिन हो जाता है । ऐसी अवस्थामें दूसरोंपर वास्तविक विजय कभी सम्भव नहीं हो सकती ।

यदि हम तर्क-वितर्क, वाद-विवाद तथा खण्डन-मण्डन आदिको त्यागकर मैत्रीपूर्ण ढंगसे दूसरोंके विचारोंके प्रति प्रेम तथा सम्मान प्रकट करें तो सफलताके संयोग अधिक प्राप्त होते हैं । यदि हम किसीको प्रेम और सहानुभूतिके साथ सन्तुष्ट कर सकें या कोई बात मनवा सकें तो निस्सन्देह हम उसके वास्तविक शुभचिन्तक तथा सच्चे मित्र बन

जायँगे। उसका हममें विश्वास होगा। और कुछ नहीं तो कम-से-कम वह हमारी बात ध्यानपूर्वक अवश्य सुनेगा। उसके विचारोंको निरर्थक और दोषयुक्त बतलानेकी अपेक्षा यदि हम प्रेम तथा सौहार्दके साथ अपने सुलझे विचारोंसे उसको प्रभावित करते हुए उसके हृदयको छूनेका प्रयत्न करें तो यह निश्चय है कि वह हमारी ओर आकर्षित होने लगेगा।

विरोध, तर्क-वितर्क, कटु आलोचना तथा बालकी खाल निकालनेसे हम किसीको अपना मित्र नहीं बना सकते। सच्चे मित्र इस ढंगसे प्राप्त नहीं होते। वह दूसरा मार्ग ही है। वह मार्ग प्रेम और सहानुभूतिका है जिसपर सब ओर मित्र-ही-मित्र दिखायी पड़ते हैं। प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक बात है। यदि आप किसीको गाली देंगे तो बदलेमें गाली खायँगे। यदि आप किसीको मूर्ख कहेंगे तो आपको भी मूर्ख कहा जायगा। आप आलोचना करेंगे तो आपसे प्रत्यालोचना अवश्य मिलेगी। इसी प्रकार यदि आप प्रेम करेंगे तो अवश्य प्रेमका प्रतिदान होगा। जैसा बोयेंगे, वैसा काटेंगे। यह सीधी-सी बात है।

प्रेम ही महान् शक्ति है, जो प्रत्येक दशामें जीवनको आगे बढ़ानेमें सहायक होती है। हमें सदैव सहनशील बनना तथा धैर्यका सहारा लेना चाहिये। मतवैभिन्न्यके चक्करमें हमें नहीं पड़ना चाहिये। प्रत्येककी बातको शान्तिसे सुननेका स्वभाव होना चाहिये। कट्टरता और कायरताको त्यागकर प्रत्येकको सच्चे हृदयसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिये। दूसरोंकी कटु आलोचनाको छोड़ देना चाहिये। विश्वास रखिये कि आपकी प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण सच्ची बातोंको सुननेके लिये दुनिया विवश होगी।

सच्ची मान्यता प्रेमके द्वारा ही हो सकती है। बिना प्रेमके मान्यता कृत्रिम होगी। शेक्सपियरके अनुसार कहना अनुचित न होगा कि बिना प्रेमके किसीके विचारोंमें परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। विचार तर्क-वितर्ककी सृष्टि नहीं है। विचारधारणा तथा विश्वास बहुकालके सत्सङ्गसे बनते हैं। अधिक समयकी संगतिका ही परिणाम प्रेम है। इसलिये विचारधारणा अथवा विश्वास प्रेमका विषय है।

अतः यदि हम दूसरोंपर विजय प्राप्त करके उनको अपनी विचारधारामें बहाना चाहते हैं, उनके दृष्टिकोणको बदलकर अपनी बात मनवाना चाहते हैं तो हमें सच्चे प्रेमका सहारा लेना चाहिये। तर्क और बुद्धितत्त्व हमें आगे नहीं बढ़ा सकते। वास्तवमें प्रेम ही वशीकरणका मूल मन्त्र है।

# भक्त-गाथा

## भक्त विमलतीर्थ

पण्डित विमलतीर्थ नैष्ठिक ब्राह्मण थे। बड़ा सदाचारी, पवित्र कुल था इनका। त्रिकाल सन्ध्या, अग्निहोत्र, वेदका स्वाध्याय, तत्त्वविचार आदि इनके कुलमें सबके लिये मानो स्वाभाविक कर्म थे। सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया, नम्रता, अस्तेय, अपरिग्रह और सन्तोष आदि गुण इस कुलमें पैतृक सम्पत्तिके रूपमें सबको मिलते थे। इतना सब होनेपर भी भगवान्के प्रति भक्तिका भाव जैसा होना चाहिये, वैसा नहीं देखा जाता था। पण्डित विमलतीर्थ इस कुलके एक अनुपम रत्न थे। इनकी माताका देहान्त लड़कपनमें ही हो गया था। ननिहालमें बालकोंका अभाव था, अतः यह पहलेसे ही अधिकांश समय नानीके पास रहते थे। माताके मरनेपर तो नानीने इनको छोड़ना ही नहीं चाहा, ये वहीं रहे। इनके नाना पण्डित निरञ्जनजी भी बड़े विद्वान् और महाशय थे। उनसे इनको सदाचारकी शिक्षा मिलती थी तथा गाँवके ही एक सुनिपुण अध्यापक इन्हें पढ़ाते थे। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। कुलपरम्पराकी पवित्र विद्याभिरुचि इनमें थी ही। अतएव इनको पढ़ानेमें अध्यापक महोदयको विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता था। ये ग्रन्थोंको ऐसे सहज ही पढ़ लेते थे जैसे कोई पहले पढ़े हुए पाठको याद कर लेता हो। यज्ञोपवीत नानाजीने करवा ही दिया था, इसलिये ये त्रिकाल सन्ध्या करते थे। नित्य प्रातःकाल बड़ोंको प्रणाम करते, उनकी श्रेष्ठ आज्ञाओंका कुतर्क-शून्य बुद्धिसे परंतु समझकर भलीभाँति पालन करते और सहज ही सबके स्नेहभाजन बने हुए थे।

विमलजीकी नानी सुनन्दादेवी परम भक्तिमती थी। उसने अपने पतिकी परमेश्वरभावसे सेवा करनेके साथ ही परम पति, पतिके भी पति भगवान्‌की सेवामें अपने जीवनको लगा रक्खा था। भगवान्‌पर और उनके मङ्गल-विधानपर उसका अटल विश्वास था और इसलिये वह प्रत्येक स्थितिमें नित्य प्रसन्न रहा करती थी। इस प्रकारकी गुणवती पत्नीको पाकर पण्डित निरञ्जनजी भी अपनेको धन्य मानते थे। नन्दादेवी घरका सारा काम बड़ी दक्षता तथा सावधानीके साथ करती। परंतु इसमें उसका भाव यही रहता कि यह घर भगवान्‌का है, मुझे इसकी सेवाका भार सौंपा गया है। जबतक मेरे जिम्मे यह कार्य है, तबतक मुझे इसको सुचारुरूपसे करना है। इस प्रकार समझकर वह समस्त कार्य करती; परंतु घरमें, घरकी वस्तुओंमें, कार्यमें तथा कार्यके फलमें न उसकी आसक्ति थी, न ममता। उसकी सारी आसक्ति और ममता अपने प्रभु भगवान् नारायणमें केन्द्रित हो गयी थी। इसलिये वह जो कुछ भी करती, सब अपने प्रभु श्रीनारायणकी प्रीतिके लिये, उन्हींका काम समझकर करती, इससे काम करनेमें भी उसे विशेष सुख मिलता था। शुद्ध कर्तव्यबुद्धिसे किये जानेवाले कर्ममें भी सुख है, परंतु उसमें वह सुख नहीं है जो अपने प्राणप्रिय प्रभुकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले कर्ममें होता है। उसमें रूखापन तो कभी होता ही नहीं, एक विशेष प्रकारके रसकी अनुभूति होती है जो प्रेमीको पद-पदपर उल्लसित और उत्फुल्लित करती रहती है और वह नित्य-नूतन उत्साहसे सहज ही प्राणोंको न्योछावर करके प्रभुका कार्य करता रहता है; परंतु इस प्रकारके कार्यमें जो उसे अप्रतिम रसानुभूति मिलती है उसका कारण कर्म या उसका कोई फल नहीं है, उसका कारण है प्रभुमें केन्द्रित आसक्ति और ममत्व। प्रभु उस कार्यसे प्रसन्न न हों और किसी दूसरे कार्यमें लगाना चाहें तो उसे उस पहले कार्यको छोड़कर दूसरेके करनेमें वही आनन्द प्राप्त होगा जो पहलेको करनेमें होता था। सुनन्दाका इसी भावसे घरवालोंके साथ सम्बन्ध था और इसी भावसे वह घरका सारा कार्य सँभालती तथा करती थी। आज मातृहीन विमलको भी, सुनन्दा इसी भावसे हृदयकी सारी स्नेह-सुधाको उँडेलकर प्यार करती और पालती-पोसती है कि वह प्रियतम प्रभु भगवान्‌के द्वारा सौंपा हुआ सेवाका पात्र है। उसमें नानीका बड़ा ममत्व था, पर वह इसलिये नहीं था कि विमल उसकी कन्याका लड़का है, वरं इसलिये था कि वह भगवान्‌के बगीचेका एक सुन्दर सुमधुर फलवृक्ष है, जो सेवा-सँभालके लिये उसे सौंपा गया है। नानीके पवित्र और विशद स्नेहका विमलपर बड़ा प्रभाव पड़ा और विमलकी मति भी क्रमशः नानीकी सुमतिकी भाँति ही उत्तरोत्तर विमल होती गयी। उसमें भगवत्परायणता, भगवद्विश्वास, भगवद्भक्ति और शुभ भगवदीय कर्मके मधुर तथा निर्मल भाव जाग्रत् हो गये। वह नानीकी भगवद्-विग्रहकी सेवाको देख-देखकर मुग्ध होता, उसके मनमें भी भगवत्सेवाकी आती। अन्तमें उसके सच्चे तथा तीव्र मनोरथको देखकर भगवान्‌की प्रेरणासे नानीने उसके लिये भी एक सुन्दर भगवान् नारायणकी प्रतिमा मँगवा दी और नानीके उपदेशानुसार बालक विमल बड़े भक्तिभावसे भगवान्‌की पूजा करने लगा।

विमलतीर्थजीके विमल वंशमें सभी कुछ विमल तथा पवित्र था। भगवद्भक्तिकी कुछ कमी थी—वह यों पूरी हो गयी। कर्मकाण्ड, विद्या तथा तत्त्व-विचारके साथ जिसमें नम्रता तथा विनय होती है, वह अन्तमें विद्या तथा तत्त्वके परम फल श्रीभगवान्‌की भक्तिको अवश्य प्राप्त करता है। परंतु जहाँ कर्मकाण्ड, विद्या एवं तत्त्वविचार अभिमान तथा घमंड पैदा करनेवाले होते हैं वहाँ परिणाममें पतन होता है। वस्तुतः जो कर्म, जो विद्या और जो विचार भगवान्‌की ओर न ले जाकर अभिमानके

मलसे अन्तःकरणको दूषित कर देते हैं, वे तो कुकर्म, अविद्या और अविचाररूप ही हैं। विमलतीर्थके कुलमें कर्म, विद्या और तत्त्वविचारके साथ सहज नम्रता थी—विनय थी और उसका फल भगवान्‌में रुचि तथा रति उत्पन्न होना अनिवार्य था। सत्कर्मका फल शुभ ही होता है और परम शुभ तो भगवद्भक्ति ही है। नानी सुनन्दाके सङ्गसे विमलतीर्थकी विमल कुलपरम्पराके पवित्र फलका प्रादुर्भाव हो गया! नाना-नानीने बड़े उत्साहसे पवित्र कुलकी साधुस्वभावा सुनयनादेवीके साथ विमलतीर्थका विवाह पवित्र वैदिक विधानके अनुसार कर दिया। सुलक्षणवती बहू घरमें आ गयी। वृद्धा सुनन्दाके शरीरकी शक्ति क्षीण हो चली थी, अतएव घरके कार्यका तथा नानीजीके ठाकुरकी पूजाका भार सुनयनाने अपने ऊपर ले लिया। वृद्धा अब अपना सारा समय भगवान्‌के स्मरणमें लगाने लगी। निरञ्जन पण्डित भी बूढ़े हो गये थे। पर उनका स्वभाव बड़ा ही सुन्दर था। उन्होंने अपना मन भगवान्‌में लगाया। कुछ समयके बाद वृद्ध दम्पतिकी भगवान्‌का स्मरण करते-करते बिना किसी बीमारीके सहज ही मृत्यु हो गयी। विमल और सुनयना यों तो नाना-नानीकी सेवा सदा-सर्वदा करते ही थे, परंतु पुण्यपुञ्ज दम्पतिने बीमार होकर उनसे सेवा नहीं ली। अब विमलतीर्थ ही इस घरके स्वामी हुए। पति-पत्नीमें बड़ा प्रेम था, दोनोंके बहुत पवित्र आचरण थे। दोनों ही भक्तिपरायण थे। विमल अपने भगवान्‌की पूजा नियमित रूपसे प्रेमपूर्वक करते थे और सुनयनादेवी नानी सुनन्दाके दिये हुए भगवान्‌की पूजा करती थी। यों पति-पत्नीके अलग-अलग ठाकुरजी थे। पर ठाकुर-सेवामें दोनोंको बड़ा आनन्द आता था। दोनों ही मानो होड़-सी लगाकर अपने-अपने भगवान्‌को सुख पहुँचानेमें संलग्न रहते थे। दोनोंमें ही विद्या थी, श्रद्धा थी और सात्त्विक सेवा-भाव था।

विमलतीर्थके तीन बड़े भाई थे। वे भी बहुत अच्छे स्वभावके तथा शुभकर्मपरायण थे। छोटे भाई विमल अब एक प्रकारसे उन लोगोंके मामाके स्थानापन्न थे। चारोंमें परस्पर बड़ी प्रीति और स्नेह-सौहार्द था। प्रीतिका नाश तो स्वार्थमें होता है; इनका स्वार्थ विचित्र ढंगका था। ये परस्पर एक-दूसरेका विशेष हित करने, सुख पहुँचाने और सेवा करनेमें ही अपना स्वार्थ समझते थे। त्याग तो मानो इनकी स्वाभाविक सम्पत्ति थी; जहाँ त्याग होता है, वहाँ प्रेम रहता ही है और जहाँ प्रेम होता है, वहाँ आनन्दको रहने, बढ़ने तथा फूलने-फलनेके लिये पर्याप्त अवकाश मिलता है। दोनों परिवार इसीलिये आनन्दपूर्ण थे। नामके ही दो थे। वस्तुतः कार्यरूपमें एक ही थे।

विमलतीर्थजीके मनमें वैराग्य तो था ही। धीरे-धीरे उसमें वृद्धि होने लगी। भगवान्‌की कृपासे उनकी धर्मपत्नी इसमें सहायक हुई। दोनोंमें मानो वैराग्य तथा भक्तिकी होड़ लगी थी। ऐसी सात्त्विक ईर्ष्या भगवत्कृपासे ही होती है। इस ईर्ष्यामें एक-दूसरेसे आगे बढ़नेकी चेष्टा तो होती है, परंतु गिरानेकी या रोकनेकी नहीं होती। बल्कि परस्पर एक-दूसरेकी सहायता करनेमें ही प्रसन्नता होती है। शक्ति गिरानेमें नहीं, बढ़ने और बढ़ानेमें लगती है। यही शक्तिका सदुपयोग है।

आखिर उपरति बढ़ी, दोनों भगवान्‌के ध्यानमें मस्त रहने लगे। एक दिन भगवान्‌ने कृपा करके सुनयना-देवीको दर्शन दिये और उसी दिन भगवदाज्ञासे वे शरीर छोड़कर भगवान्‌के परमधाममें चली गयीं। विमलतीर्थ-जीको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। होड़में पत्नीकी विजय हुई। उसने भगवान्‌का साक्षात्कार पहले किया। विमलतीर्थजीके लिये यह बड़े ही आनन्दका प्रसङ्ग था। इस सात्त्विक होड़में हारनेवालेको जीतनेवालेकी जीतपर जिस अलौकिक सुखकी अनुभूति होती है, जगत्‌के स्वार्थी मनुष्य उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। अस्तु।

अब विमलतीर्थ सर्वथा साधनामें लग गये। वे वनमें जाकर एकान्तमें रहने लगे और अपनी सारी विद्या-बुद्धिको भूलकर निरन्तर भगवान् श्रीनारायणके मङ्गलमय ध्यानमें ही रत रहने लगे। धीरे-धीरे भगवान्के दिव्य दर्शनकी उत्कण्ठा बढ़ी और एक दिन तो वह इतनी बढ़ गयी कि अब क्षणभरका विलम्ब भी असह्य हो गया। जैसे अत्यन्त पिपासासे व्याकुल होकर मनुष्य जलकी बूँदके लिये छटपटाता है और एक क्षणकी देर भी सहन नहीं कर सकता, वैसी दशा जब भगवान्के दर्शनके लिये भक्तकी हो जाती है तब भगवान्को भी एक क्षणका विलम्ब असह्य हो जाता है और वे अपने सारे ऐश्वर्य-वैभवको भुलाकर उस नगण्य मानवके सामने प्रकट होकर उसे कृतार्थ करते हैं। भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् श्रीनारायण विमलतीर्थको कृतार्थ करनेके लिये उनके सामने प्रकट हो गये। वे चकित होकर निर्निमेष नेत्रोंसे उस विलक्षण रूपमाधुरीको देखते ही रह गये। बड़ी देरके बाद उनमें हिलने-डोलने तथा बोलनेकी शक्ति आयी। तब तो आनन्द-मुग्ध होकर वे भगवान्के चरणोंमें लोट गये और प्रेमाश्रुओंसे उनके चरण-पद्मोंको पखारने लगे। भगवान्ने उठाकर बड़े स्नेहसे उनको हृदयसे लगा लिया और अपनी अनुपम अनन्य भक्तिका दान देकर सदाके लिये पावन बना दिया!

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

# स्वाधीनताका स्वरूप और सुख

( लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा )

हमारी स्वाधीनताके तीन वर्ष पूरे हो गये, फिर भी हमें अपनी स्वतन्त्रताका सच्चा सुख क्यों नहीं मिलता। इसके अनेक कारण बतलाये जाते हैं और उन कारणोंको लेकर लोग परस्पर दोषारोपण करते रहते हैं। पर विचार करनेपर पता लगता है कि सुख न होनेका वास्तविक कारण अज्ञान है। हम जानते ही नहीं कि स्वाधीनता किसे कहते हैं। जबतक हम असली स्वाधीनताको नहीं पहचानेंगे, हमको उसका आन्तरिक सुख नहीं प्राप्त होगा।

यह असली स्वाधीनता क्या है? इसका क्या महत्त्व है? यही तो हम भी जानना चाहते हैं। हम स्वाधीनता क्यों चाहते हैं? बाबा तुलसीदासजी लिख गये हैं—

'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं'

जब पराधीनतामें सपनेमें भी सुख नहीं मिलता तो स्वाधीनताका मतलब ही है सुख दिलानेवाली वस्तु। पर सुख है क्या वस्तु?

एक फ्रेंच महापुरुषने कहा है कि 'वही मनुष्य संसारमें सुखी है जिसे भगवान्ने एक रोटीका टुकड़ा खानेको दिया है, पर जिस टुकड़ेके लिये उसे ईश्वरको छोड़कर और किसीको धन्यवाद देनेकी आवश्यकता नहीं होती।' सचमुच वह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली है, जो चाहे एक टुकड़ा ही रोटी क्यों न पाता हो, पर किसीका आश्रित न हो। यदि स्वाधीनताका अर्थ स्वावलम्बी बनना है तो आज हममेंसे कितने भारतीय अपनी स्वतन्त्रताके बाद स्वावलम्बी बननेकी सोच रहे हैं? जिसे देखिये, वह या तो नौकरी या अधिकारके पीछे पागल है या जल्दी-से-जल्दी अधिक-से-अधिक चोरी करके धनी बन जाना चाहता है। शीघ्र सफलताके लिये आज हम जितने उतावले हैं, उतने पहले कभी न थे। हमें सब कुछ चाहिये तथा जल्दी-से-जल्दी चाहिये और इसी जल्दबाजीका परिणाम है कि हम अपनी वासनाओंके दास बनते चले जा रहे हैं!

जिसे भी संसारका लेशमात्र सुख भोगना हो उसे 'कौबेट'का कथन ध्यानमें रखना चाहिये—

'मानव अपने साधनोंकी महानतासे नहीं पर अपनी इच्छाओं अथवा कामनाओंकी लघुतासे ही स्वतन्त्रता प्राप्त करता है।'

कौबेटका मतलब यह है कि जीवनमें स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है, कि हमारी आवश्यकताएँ कम-से-कम हों। हमको वासना, लोभ तथा तृष्णा न सताती रहे और हम यह ध्यानमें रक्खें कि स्वतन्त्र-जीवनमें जहाँ स्वावलम्बन आवश्यक है, वहीं पड़ोसीपर भरोसा करना, समाजके साथ मिलकर चलना और समाजपर अवलम्बित रहना भी आवश्यक है। वर्डस्वर्थ नामक प्रसिद्ध अंग्रेज कविने लिखा है कि स्वतन्त्र व्यक्तिके लिये 'मर्दानगीके साथ दूसरोंपर निर्भर करना तथा मर्दानगीके साथ आत्मनिर्भर करना आवश्यक है।' सारांश यह कि जो व्यक्ति अपने जीवनसे उच्छृङ्खलता निकालकर तथा आवश्यकताएँ कम-से-कम बनाकर जीवन-यापन करता है, उसीको वास्तवमें स्वतन्त्रताका सुख मिल सकता है और वही उसे भोग सकता है।

स्वतन्त्रता अपने मनमें होती है। उसका बाहरी आडम्बर बहुत छोटा होता है, पर मनके भीतर वह तभी पैदा होती है जब हम उसे पैदा करना जानते हैं। कामना और लोभ हमारे मनको इतना गुलाम बनाये हुए हैं कि सुबुद्धि हमारे निकट भी नहीं फटक पाती। शेल्टनने लिखा है कि 'चाहे गरीब हो या अति धनी, दोनोंको ही स्वाधीनताका पूरा सुख मिल सकता है, यदि दोनों एक बात सीख जावें और वह बात है अपनी आवश्यकताओंको अपनी-आपकी मर्यादाके भीतर रखना। जो आदमी यह करना जानता है, वह जीवनका सब सुख प्राप्त कर सकता है। हमारी समझमें आज हम भारतीय यदि अपनी आध्यात्मिक, भौतिक तथा मानसिक स्वाधीनताको नहीं भोग सकते तो उसका कारण हमारी तृष्णा, लोभ तथा मोह है। इन्हींके वशीभूत होकर हम न तो देशके कामके रह गये और न शासनके ही।

## अपना गुण

मानव-जीवनके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपदेश हमने 'हीजेलेमान' का पढ़ा है। वे लिखते हैं—

'ऐ युवक! अपने चारों ओर लोगोंको छद्म और अविश्वासके द्वारा धनी होने दो। तुम दरिद्र बने रहो। दूसरोंको भीख माँगकर समाजमें शक्ति तथा अधिकार प्राप्त करने दो, तुम बिना इनके रहो। तुम्हारी आशाएँ निराशाओंमें परिणत हो जायँ, पर दूसरोंके समान चापलूसी करके कुछ प्राप्त करनेकी इच्छा मत करो। अपने गुणोंकी चादर ओढ़े हुए सच्चा साथी ढूँढ़ो और ईमानदारीसे रोटी कमाओ। यदि ऐसा जीवन बिताते हुए तुम बूढ़े हो गये और कोई सांसारिक सम्मान तुमको न मिला तो कोई चिन्ताकी बात नहीं, तुम शान्तिसे मर सकोगे।'

जो ऐसी मृत्यु चाहता हो, वही वास्तवमें सच्ची स्वाधीनता जानता है और उसका सुख भोग सकता है। जिसने स्वाधीनताको अधिकार, पद, सम्मान तथा अधिकारके दुरुपयोगका साधन समझा है, वह इसका सुख न तो स्वयं भोग सकता है और न किसी दूसरेके भोगनेमें सहायक हो सकता है। स्वार्थी तथा पदलोलुप लोगोंने हमारी नवप्राप्त स्वाधीनताको विषैला कर रक्खा है। इनके कारण न तो हम उसका सुख ठीकसे भोग पाते हैं, न समझ ही पाते हैं!

स्वाधीनता बड़ी भारी वस्तु है। बिना इसके मानवका विकास नहीं हो सकता। इसके बिना राष्ट्रकी आत्मा चेत नहीं सकती। बिना इसके देशका नैतिक स्तर ऊँचा नहीं हो सकता और 'पार्क गौडविन'ने सत्य लिखा है कि मानव-जीवनके लिये

सबसे अधिक कल्याणकर कार्य तभी हो सकते हैं, जब जनता स्वतन्त्र हो जाय।

यहाँतक तो बात समझमें आ गयी, पर सवाल यह है कि मानवका कल्याण है किस बातमें ? किस काममें ? स्वाधीनताका अर्थ है पराधीन न रहना। पर ऐसी स्वाधीनतासे क्या लाभ, जिससे हम अपनी वासनाओंके ही अधीन हो गये। दूसरोंसे पद तथा अधिकारकी आशाकी टकटकी लगाये बैठे रहे ! महत्त्वाकाङ्क्षाएँ निस्सीम होकर मानवको संसारका गुलाम बना देती हैं। दत्तात्रेयका वचन है—

आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः॥

जिसने आशाको दासी बना लिया है, वह संसारको अपना दास बना सकता है, पर आशाको दासी वही बना सकता है जो सत्य और सुखका रहस्य जानता है। सत्य और सुखका रहस्य जाननेवाला ही संसारमें सफल जीवन बिता सकता है तथा सुखी प्राणी हो सकता है और अपनी स्वाधीनताका आनन्द उठा सकता है। जबतक हम वास्तविक सुखको नहीं पहचानेंगे, हमको अपनी स्वाधीनताका आनन्द न प्राप्त होगा। आज अपने अज्ञानके कारण ही हम भटक रहे हैं। पर न तो सुख पा रहे हैं, न चैन।

सुख तथा सत्यकी एक बहुत अच्छी परिभाषा हमें 'मार्क्स आरलियस' बतला गये हैं। पाठक इस परिभाषाकी प्रत्येक पङ्क्ति ध्यानपूर्वक पढ़ें और आजसे ही इसके अनुकूल काम करनेका संकल्प करें।

जीवनमें तुम्हें किस वस्तुसे सच्चा लाभ होता है ? न्याय, सत्य, स्फटिक-जैसी बुद्धि और धैर्य इनके सिवा और चाहिये ही क्या ? अपने मनको स्वच्छ रखनेसे मनुष्य बुद्धिमान् होता है। बुद्धिमान् बनना हरेक मनुष्यके अपने हाथमें है। ललाट-लेखको शायद तुम बदल नहीं सकते, किंतु इष्ट और अनिष्टको समान भावसे देखना तुम्हारे अपने हाथमें है। यदि सुख पानेका और कोई तरीका तुम्हें सूझे, तो अवश्य उसका प्रयोग करो। आध्यात्मिक तत्त्व ही सबसे ऊँचा है। विचारोंको वशमें रक्खो, इन्द्रियोंका निग्रह करो, ईश्वरपर श्रद्धा रक्खो और सदा परहित-रत रहो। शेष सब विषयोंको तुच्छ समझो ! मनको इधर-उधर न भागने दो। नहीं तो, पीछे उसके वेगका रोकना असम्भव हो जायगा। सब दुःखोंका निवारण इसीमें है। धन, दौलत, कीर्ति—यह सब वृथा हैं।

सत्यको छोड़कर प्राप्त की हुई वस्तुसे आनन्द नहीं मिल सकता। जिस वस्तुसे तुम्हारे गौरवपर बट्टा लगता हो, उससे दूर रहो। घृणा, विरोधभाव, ढोंग इत्यादिको छोड़ो। उनकी खोजमें मत पड़ो। जिस भोगको तुम दूसरोंसे छिपकर दीवार या परदेकी आड़में भोगते हो, उससे सच्चा आनन्द कैसे प्राप्त हो सकता है ? हृदयस्थित ईश्वर जिसकी अनुमति देता है उसी धर्मके अनुयायी बनो। उस सत्य मार्गपर चलनेवालेको कभी ग्लानि नहीं होगी। उसे संन्यास ग्रहण करके वनमें जानेकी आवश्यकता नहीं। उसे अपने आसपास बन्धुजनोंकी भीड़ लगाये रखनेकी भी आवश्यकता नहीं। वह हर्ष, शोक, इच्छा, द्वेषोंसे विमुक्त और निश्चिन्त रहता है। ज्ञानी मनुष्य कालसे भी नहीं डरता। प्राणोंकी उसे परवा नहीं रहती। शरीरधर्मका पालन करते हुए जैसे वह मलत्याग करता है, वैसे ही खुशी-खुशी प्राण छोड़ देता है।

# पर उपकार सरिस नहिं धर्मा

**[ कहानी ]**

( लेखक—स्वामी श्रीपारसनाथजी सरस्वती )

( १ )

श्यामगढ़का राजा श्यामसिंह चाहता था—नामवरी; परंतु कीर्तिकारी गुण उसमें नहीं थे। रामगढ़का राजा रामसिंह था गुणवान्। उसका नाम देशके कोने-कोनेमें फैलने लगा। श्यामसिंहको ईर्ष्या हुई। उसने अकारण रामसिंहपर चढ़ाई कर दी।

रामसिंहने विचार किया—'यदि मैं सामना करता हूँ तो बेकार हजारों आदमी मारे जायँगे। उनके बच्चे अनाथ हो जायँगे। उनकी स्त्रियाँ मुझे शाप देंगी। युद्ध नाना व्याधियोंकी जड़ है।' रामसिंह रातको महलसे निकल गया और एक पहाड़की गुफामें जा बैठा। श्यामसिंहने बिना मार-काटके महलपर अधिकार कर लिया।

प्रातः गद्दीपर बैठकर श्यामसिंहने दरबार किया और यह घोषणा की—'जो कोई रामसिंहको पकड़ लायेगा उसे एक लाख रुपया इनाम दिया जायगा।'

( २ )

जिस जंगलमें राजा रामसिंह छिपे थे, वहाँ दो भाई लकड़ी काटने गये। वे लोग लकड़ी बेचकर ही जीवन-निर्वाह किया करते थे। बड़े भाईका नाम था जंगली, छोटेका नाम था मंगली। जाति चमार। अत्यन्त गरीब। घरमें दोनोंकी औरतें थीं, एक-एक बच्चा भी। कठिन कलेसमें जान थी। जिस गुफामें राजा साहब छिपे बैठे थे, उसीके पासवाले वृक्षपर वे दोनों भाई लकड़ी काटने लगे।

*मंगली बोला*—'धत् तेरी तकदीरकी! कहीं अभागा रामसिंह ही मिल जाता तो पकड़ ले जाता। एक लाख मिलते। सात पुस्तका दालिद्दर दूर हो जाता!'

*बड़ा भाई जंगली बोला*—'क्या बकता है? ऐसे दयावान्, धरमवान् और मिहरबान राजाके लिये तेरे ऐसे कमीने विचार? लानत है। तुझे देखकर नरक भी नाक सिकोड़ेगा!'

*मंगलीने कहा*—'मिल जाता अभागा तो मैं तो ले जाता। आखिर कोई तो ले ही जायगा? मैं ही क्यों न इनाम मारूँ?'

*जंगलीने उत्तर दिया*—'अगर हमारा राजा हमें मिल भी जाय, तो भी हम उन्हें वहाँ न ले जायें। रुपया कितने दिन चलेगा? लेकिन हमारी बदनामी एक अमर कहानी बन जायगी। राम राम! ऐसी बात सोचना भी पाप है। न मालूम श्यामसिंह क्या बरताव उनके साथ करे? मार ही डाले तो?'

*मंगली*—कल मरता हो तो आज मर जाय। मेरे लिये उसने क्या किया? श्यामसिंह उसे पातालसे खोज निकालेगा। तुम्हारे छोड़ देनेसे वह बच नहीं जायगा। मुझीको मिल जाता—फूटी तकदीरवाला! मार देता एक लाखका मैदान! टूट जाती गलेकी फाँसी!

*जंगली*—नहीं नहीं! राम राम! शिव शिव! भगवान् उनकी रक्षा करें। वे फिर हमारे राजा होंगे।

( ३ )

यह बातचीत सुनकर राजा रामसिंह गुफासे बाहर निकलकर उस पेड़के पास चले आये। उनको देखकर दोनों भाई अचकचा गये।

*राजा*—मुझे ले चलो।

*जंगली*—नहीं महाराज! ये लड़का पागल है। इसकी बातोंपर कान मत दीजिये।

*राजा*—अगर मेरी जानके द्वारा किसीकी भलाई हो जाय तो क्या हर्ज है ? पर उपकार सरिस नहिं धर्मा ! मुझे ले चलो ।

मंगली गुमसुम खड़ा राजाको देखने लगा ।

*जंगली*—हम अपनी जान देकर आपकी जान बचायेंगे—महाराज !

*राजा*—अच्छा तो मैं खुद ही राजा श्यामसिंहके पास जाता हूँ । कह दूँगा कि इस लकड़हारेने मुझे गुफामें छिपा दिया था ।

जंगली हँसा । बोला—'यह काम भी आप न कर सकेंगे—राजा साहब ! जो दूसरेकी भलाई किया करता है, उससे दूसरेकी बुराई हो ही नहीं सकती ।'

बातचीत सुनकर चार राहगीर वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने राजाको पहचान लिया और पकड़ लिया । जंगली भी रोता हुआ पीछे-पीछे चला । लकड़ी लेकर मंगली घर चला गया । मंगलीने मनमें कहा—'धत् तेरी तकदीरकी । जालमें आकर चिड़िया उड़ गयी ।'

( ४ )

*श्यामसिंह*—शाबास ! तुमलोग पकड़ लाये ? किसने पकड़ा ?

*एक बोला*—मैंने !

*दूसरा बोला*—मैंने !

*तीसरा बोला*—मैंने !

*चौथा बोला*—मैंने !

*श्यामसिंह*—सच कहो किसने पकड़ा ?

*चारों*—सच कहते हैं—हमने !

*रामसिंह*—आप बिल्कुल सच बात जानना चाहते हैं ?

*श्यामसिंह*—जी हाँ !

*रामसिंह*—मुझे इन चारमेंसे किसीने नहीं पकड़ा ।

*श्यामसिंह*—फिर किसने पकड़ा ?

*रामसिंह*—वह जो कोनेमें कुल्हाड़ी लिये लकड़हारा खड़ा है, उसीने पकड़ा है । उसे इनामका एक लाख दीजिये ।

श्यामसिंहने इशारेसे जंगलीको अपने पास बुलाया ।

*श्यामसिंह*—सच कहो । मामला क्या है ?

जंगलीने आरम्भसे अन्ततक सारा किस्सा सच्चा बयान कर दिया ।

*श्यामसिंहने कहा*—'इन चारोंपर सौ-सौ जूते फटकार कर दरबारसे निकाल दिया जाय ।'

सिपाही लोग झपटे । चारोंको मार-पीट बाहर कर दिया । एक लाख रुपये देकर जंगलीको भी विदा कर दिया गया ।

( ५ )

श्यामसिंहने गद्दीपरसे कूदकर रामसिंहको छातीसे लगा लिया । फिर बोले—'जैसा सुना था—वैसे ही आप निकले । परोपकारके लिये अपनी जान भी खतरेमें डाल दी ? मैं सात जनम भी आपके चरण-रजकी समानता नहीं कर सकता । अपना राज्य लीजिये, अपना महल लीजिये और खजाना सँभालिये । मैंने आपकी परीक्षा कर ली । आप नामवरीके योग्य हैं ।'

तीन दिन मिहमानी खाकर राजा श्यामसिंह अपनी सेना लेकर अपने देशको चला गया ।

गद्दीपर बैठकर राजा रामसिंहने दरबारमें कहा—

'अपने शत्रुको मत मारो । उसमें भी जीवात्मा है । किसी उपायसे शत्रुताको मार डालो । बस—शत्रुको मानो जीत लिया ।'

# आराध्य

( लेखक—श्रीबालकृष्णजी बलदुवा, बी०ए०, एल्-एल्०बी० )

( १ )

तुम मुझसे दूर नहीं। मनमें बसे हो; आँखोंमें भरे हो।
ऐसा लगता है, मेरी पहुँचके भीतर हो: हाथ बढ़ाते ही पकड़ लूँगा।
इतने स-छवि हो उठे हो मेरे निकट !!
पर हाथ बढ़ाते ही—
ओझल नहीं होते: और चमक उठते हो,
पर अँगुलियोंके छोरसे तनिक दूर,—हाँ, तनिक ही दूर।
एक बार, दो बार, बार-बार कहानी एक-सी ही रही।

( २ )

मेरे पास सब कुछ है—वह सब कुछ, जिसकी दुनियाँमें कीमत है।
दुनियाँके लिये उस सबमें सौन्दर्य है और है सुख। उसकी विकृति तो मेरी ही एकान्त अनुभूति है।
तुम मेरे पास हो, फिर भी मेरे पास नहीं। पास होते हुए भी पहुँचसे, पकड़से दूर।
मेरी चाह है, ललक है—तुममें सान्निध्यकी।
उसके लिये मैं सब कुछ सदैव छोड़नेको प्रस्तुत रहता हूँ।
पर वही प्राप्त नहीं।
सब मुझसे अधिकाधिक लिपटे जा रहे हैं, पर मैं तो तुम्हारा स्पर्श चाहता हूँ।

( ३ )

ये सब मुझे भरमा सकते हैं, पर भुला नहीं।
मैं तुम्हें भूल नहीं पाता।
और—भूलूँगा भी नहीं।
मुझे कीर्ति नहीं चाहिये; वैभव नहीं चाहिये, यदि इसका अर्थ तुमसे दूर रहना है।
मैं इन सबको अपने पैरोंकी जंजीर न होने दूँगा। ये मेरी प्रगति न रोक पायेंगे।
मैं तो चलूँगा—चलता रहूँगा, जबतक तुम्हें गोदमें न भर लूँ।
और यदि कभी भी यह सुखद घड़ी न आयी,
तो—
चलता रहूँगा, चलता रहूँगा—क्यारियाँ रौंदते, झाड़ियाँ रौंदते,
तुम्हारी ओर, तुम्हें ही पकड़ने, मुस्कुराते या पैरोंमें काँटोंकी चुभन लिये, कंकड़ोंकी हूक लिये,
जबतक जीवनकी धड़कन है;
मेरा अस्तित्व है।



# कामके पत्र

( १ )

## मान-बड़ाईसे बचिये

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपा-पत्र मिला। आपका यह लिखना ठीक है कि 'यदि लोगोंका उपकार होता हो तो अपनेको सम्मान स्वीकार करनेमें भी क्यों असम्मत होना चाहिये। बिना श्रद्धाके कोई भी मनुष्य हमारे बतलाये हुए मार्गपर चलता नहीं और श्रद्धा होनेपर सम्मान स्वाभाविक हो ही जाता है। यदि उस सम्मानमें हमारी कोई आसक्ति नहीं है तो फिर हमें उसमें क्या हानि है और क्यों हमें उसका विरोध करना चाहिये ?' इसका उत्तर यह है कि यदि आपका मन सर्वथा अनासक्त हो गया है तब तो आपके लिये कोई हानि नहीं है, परंतु उसमें भी लोकसंग्रहकी दृष्टिसे तो हानि है ही। मान लें, आप अनासक्त हैं पर सब लोग तो अनासक्त नहीं हैं; आपकी देखा-देखी उन सम्मान चाहनेवाले लोगोंको मान प्राप्त करनेमें सुविधा होगी, वे इससे अनुचित लाभ उठाना चाहेंगे और फलतः उनका पतन होगा। इस दृष्टिसे भी मानका स्वीकार करना अनुचित है। परंतु असल बात तो दूसरी ही है। मान-बड़ाईकी वासना इतनी सूक्ष्मरूपसे मनमें रहती है कि बहुत बार तो उसके अस्तित्वका प्रत्यक्ष पता ही नहीं लगता। कई बार मन ऐसा धोखा देता है कि कर्तव्य और धर्मके सुन्दर सुनिर्मल स्वरूपमें वह मोहको लाकर सामने खड़ा कर देता है और मनुष्य उसके वशमें होकर भगवान्‌के बदले मायाकी गुलामीमें लग जाता है। वह समझता है, मैं सेवा कर रहा हूँ, लोकोपकार कर रहा हूँ, और करता है तुच्छ मान-बड़ाईका दासत्व ! ऐसा भी देखा गया है कि 'अमुक व्यक्ति जरा भी सम्मान नहीं चाहता, कितना बड़ा त्यागी संत है' लोगोंके द्वारा इस प्रकार समझे जाने तथा कहलानेके लिये मनुष्य मिलते हुए सम्मानका तिरस्कार कर देता है। असलमें अपना मन ही इस रहस्यको जान सकता है। पर मान-बड़ाईकी प्राप्तिमें यदि मनमें हर्ष होता हो तो जान लेना चाहिये कि मान-बड़ाईमें आसक्ति और कामना है, चाहे वह ऊपरसे न प्रतीत होती हो।

पर लोकोपकारके नामपर मान-बड़ाईका स्वीकार करना तो अधिकांशमें धोखेकी ही चीज है। मेरी तो ऐसी ही समझ है। आपकी स्थिति किस प्रकारकी है, मैं नहीं जानता; परंतु आपको बातोंमें मुझे तो धोखा अवश्य मालूम होता है। इसीलिये मैं आपसे पुनः सावधान रहनेके लिये नम्र अनुरोध करता हूँ। लोगोंमें भजन-सत्सङ्गका प्रचार हो यह बहुत अच्छी बात है; परंतु उसका साधन 'आपका सम्मान' हो, यह आवश्यक नहीं है बल्कि यह हानिकारक है। और इसका परिणाम भजन-साधनको प्रायः घटानेवाला ही होगा, ऐसी मेरी धारणा है। जो लोग सभाओंमें मानपत्रादि स्वीकार करते हैं, आनन्दका आस्वादन करते हुए अपने मुँहपर अपनी मिथ्या प्रशंसाके गीत, काव्य और भाषण सुनते हैं और उसमें रसका अनुभव करते हैं, वे तो निश्चय ही अपने हाथों अपनी हानि कर रहे हैं। आप यह निश्चय मानिये कि मुँहपर बड़ाई करनेवालोंकी अधिकांश बातें अत्युक्तिपूर्ण और मिथ्या होती हैं। ऐसी प्रशंसाको सुनकर जो लोग अपनेको बड़ा मान लेते हैं वे वस्तुतः बुद्धिहीन हैं। सच्ची बात तो यह है कि हमारी निन्दा करनेवालोंमें लगभग आधेसे अधिक सच्ची निन्दा करनेवाले और फलतः हमें लाभ पहुँचानेवाले होते हैं। जो लोग प्रशंसा सुनकर तनिक भी हर्षके विकारसे ग्रस्त नहीं होते और निन्दा सुनकर धीरताके साथ

गहराईसे आत्मनिरीक्षण करने लगते हैं, वे ही सच्चे बुद्धिमान् साधक हैं । ×××× शेष भगवत्कृपा ।

( २ )

## भगवान्‌में विश्वास करके स्वस्थ हो जाइये

प्रिय भाई, सप्रेम हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । आपकी स्थिति अवश्य शोचनीय है; परंतु निराश होने-जैसी कोई बात नहीं है और इस बातको लेकर आत्महत्या करनेका विचार तो सर्वथा ही अनुचित है । प्रथम तो आत्महत्या स्वयं एक महापाप है । आत्महत्या दुःखसे छुटकारा पानेका साधन नहीं, बल्कि दुःखरूपी ग्रन्थका एक बड़ा अध्याय और भी बढ़ानेवाला है । आत्महत्या करनेवालेको परलोकमें भीषण यन्त्रणा और अशान्तिका भोग करना पड़ता है । दूसरे, यह बात भी ऐसी नहीं है कि जिसके लिये यहाँतककी बात सोचना आवश्यक हो ।

आजकल लड़कोंके और लड़कियोंके पूर्ण तरुण अवस्था होनेके पश्चात् विवाह होते हैं । स्कूल-कॉलेज और छात्रावासोंके अनियन्त्रित ही नहीं, बल्कि मन-इन्द्रियोंको उत्तेजित करनेवाले वातावरणमें उन्हें रक्खा जाता है । गंदे श्रृङ्गारसे पूर्ण सिनेमा आदि देखे-सुने जाते हैं और कहीं-कहीं युवक-युवतियोंकी साथ-साथ पढ़ाई होती है । ऐसी अवस्थामें जीवन सर्वथा निर्दोष रहे, अपरिपक्व-बुद्धि तरुणोंमें कोई बुरी आदत न आ जाय, यह सोचना भी एक प्रकारसे पागलपन है । अरण्यवासी आचार्य-ऋषियोंके तपःपूत आश्रमोंमें सुनियन्त्रित कठोर नियमोंसे आबद्ध संयमपूर्ण जीवनमें भी 'व्रतसे स्खलन न हो जाय', इसके लिये सावधानी रखनी पड़ती थी । तब आजकलके छात्रोंमें बुरी आदतोंका आ जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं । पर आपने जो स्थिति लिखी है उससे यह मालूम होता है कि आपको सन्देह हो गया है । वास्तवमें आपमें वह रोग नहीं है, जिसकी आप सम्भावना करते हैं । मेरे एक परिचित नवयुवक, जिन्होंने सर्वथा अपनेको इस रोगसे ग्रस्त मान लिया था, इस समय चार सन्तानोंके पिता हैं । अतएव आपको संदेह नहीं करना चाहिये और पिता-माताके इच्छानुसार विवाह कर लेना चाहिये । विवाह होनेपर, आशा है, आपकी शिकायतें दूर हो जायँगी । इस बीचमें आप प्रतिदिन गायत्री-मन्त्रका जप कीजिये । पवित्र धर्मग्रन्थोंका अध्ययन कीजिये और रात्रिके समय एकान्तमें मत सोइये । मनमें बार-बार ऐसा निश्चय कीजिये 'मैं नीरोग हूँ', 'मुझमें अमुक रोग बिल्कुल नहीं है ।' 'मैं स्वस्थ हूँ ।' 'कोई भी बुरे विचार और बुरी आदत मुझमें नहीं रह सकती; क्योंकि सर्वशक्तिमान्, नित्य निरामय भगवान्‌ने मुझको अपना लिया है ।' 'मैं उनका हो गया हूँ ।' 'उनके संरक्षणमें हूँ ।'

इस प्रकार प्रयत्न कीजिये । आशा है आप बहुत शीघ्र अपनेको स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीरका पायेंगे । भगवान्‌में और अपने आत्मामें श्रद्धा रखिये और स्वस्थ हो जाइये । विशेष भगवत्कृपा ।

( ३ )

## भगवान्‌के सामने निर्दोष रहें

प्रिय बहिन, सप्रेम हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । आपके पतिदेव आपके चरित्रपर मिथ्या सन्देह करते हैं और इससे आपको बड़ा दुःख है । सो तो ठीक ही है । निर्दोषके प्रति दोषारोपण होनेपर उसे स्वाभाविक ही बहुत दुःख होता है, पर उसे विश्वास रखना चाहिये कि वह यदि भगवान्‌के दरबारमें निर्दोष है तो उसको वस्तुतः कोई भी दोषी नहीं बना सकता । मनुष्यको ऐसा कोई भी दोषयुक्त कार्य कभी छिपकर भी नहीं करना चाहिये जिससे भगवान्‌की दृष्टिमें वह दोषी सिद्ध हो । बाहरसे कोई बहुत भला आदमी बना रहे, सब लोग उसे भला समझें और उसके मनमें दोष भरे हों, उसका भीतरी जीवन अपराधोंसे कलुषित हो

तो उसके बाहरके भलेपनका कुछ भी महत्त्व नहीं है। वह अपने-आपको धोखा देता है। भगवान् तो धोखा खा नहीं सकते। पर जो किसी पूर्वजन्मके कर्म-फलके भोगरूपमें यहाँ दोषी, अपराधी, कलङ्की कहलाता है पर वस्तुतः उसमें दोष नहीं है, अन्तरसे परम पवित्र है, तो वह यहाँ चाहे जितना बदनाम हो जाय, भगवान् उसे कभी दोषी नहीं मानते, और उसीका महत्त्व है। आप अलग रहने या अन्य किसी प्रकारसे कुछ करनेका कभी विचार न करें। सच्चे प्रेम, श्रद्धा तथा लगनके साथ पतिदेवकी सेवा करती रहें, उनके अनुकूल चलती रहें, अपने व्यवहार-बर्तावसे उनके हृदयपर अपनी भलाईका प्रभाव डालें। साथ ही इस कलङ्कभञ्जनके लिये मन-ही-मन कातर तथा आर्तभावसे भगवान्से प्रार्थना भी करती रहें। कुछ ही समय बाद आपके पतिदेवका मन आपके प्रति शुद्ध हो जायगा। आपकी आभ्यन्तरिक शुद्धि तथा व्यावहारिक सच्ची सेवाका असर पड़े बिना रहेगा ही नहीं। धैर्य रक्खें और पवित्र चित्तवृत्ति, बुद्धिमानी, दृढ़ आस्था, भगवद्विश्वास, श्रद्धा, नम्रता, सेवाभाव तथा सरल निष्कपट मधुर व्यवहारके द्वारा अपना प्रभाव-विस्तार करती रहें। वे कैसे मानते हैं, इसकी ओर दृष्टि न रखकर अपने चरित्रकी पवित्रता और सेवाभावपर विशेष ध्यान रक्खें। अपने-आप ही धीरे-धीरे उनका चित्त आपके प्रति अनुकूल होता जायगा।

संसारमें झूठे कलङ्क भी लग जाया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णपर भी मणि चुरानेका लोगोंने सन्देह कर लिया था। इसलिये घबराइये नहीं। किसी भी हालतमें सत्य और पवित्र चरित्रसे च्युत मत होइये। अन्तमें सत्यकी विजय होगी ही। आँधी आयी है, सो निकल जायगी। फिर वही निर्मल प्रकाश होगा, फिर वही यथार्थ दृष्टि होगी और उसमें सुखकी अनुभूति होगी।

सबसे आवश्यक वस्तु है भगवद्विश्वास। आप उसीका आश्रय लेकर भगवान्से प्रार्थना करती रहें। प्रार्थनामें बड़ी शक्ति है। उससे भगवत्कृपाकी अनुभूति होती है और भगवत्कृपा समस्त प्रतिकूलताओंको सहज ही अनुकूल बना देती है—

**जा पर कृपा राम कर होई। ता पर कृपा करहिं सब कोई॥**
**गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥**

आपके मनमें भगवत्प्रेम है और प्रभुकी समीपता प्राप्त करनेके लिये आप व्याकुल हैं सो यदि ऐसी बात है तो आपका बड़ा ही सौभाग्य है। सब कुछ खोकर भी मनुष्य यदि भगवत्प्रेम प्राप्त कर ले और प्रभुकी सन्निधि प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो जाय तो जानना चाहिये कि उसका जीवन सफल हो गया। पर ऐसा माननेमें बहुत बार भ्रम होता है। मनुष्यके मनमें व्याकुलता होती है सांसारिक अनुकूलताकी प्राप्तिके लिये, और वह मान बैठता है भगवान्की समीपताके लिये। जिस भाग्यवान्के चित्तमें भगवान्के लिये जब यथार्थ व्याकुलता जाग्रत् हो जाती है तब भगवान् उससे अलग नहीं रह सकते। जब क्षणमात्रका विलम्ब वस्तुतः असह्य हो जाता है तब क्षणमात्र बीतनेके पहले ही प्रभु उसके पास पहुँच जाते हैं। आपके मनमें प्रभुके लिये जितना भी प्रेम और जितनी भी व्याकुलता है, वही बहुत सौभाग्य है! आप इस प्रेम तथा व्याकुलताको बढ़ाइये पर इस बातको याद रखिये और आपके लिखनेके अनुसार आप यह भूल भी नहीं रही हैं कि आर्य-स्त्रीके लिये भगवान्की प्राप्ति पतिरूप परमेश्वरके द्वारा ही होती है। पति कितनी ही उपेक्षा करें, आप उपेक्षा न करें। आर्य-स्त्री पतिके द्वारा परित्यक्ता होनेपर भी पतिकी मङ्गलकामना करती है और इसीमें अपना सौभाग्य समझती है। आप भी इसी आदर्शका अनुकरण कीजिये।

आपको विद्यासे बहुत अनुराग है, सो बड़े

आनन्दकी बात है, विद्या वस्तुतः बड़ी ही उत्तम वस्तु है। असली विद्या तो अध्यात्मविद्या है जिसके द्वारा भगवान्‌की पहचान होती है। ········शेष भगवत्कृपा।

( ४ )

## मृत्युपर शोक नहीं करना चाहिये

प्रिय भाई, सप्रेम हरिस्मरण। कुछ दिनों पूर्व तुम्हारा लिखा एक कार्ड मिला था।········उस दिन अकस्मात् श्री········के पत्रसे भाई········की बीमारीका समाचार मिला और तीसरे ही दिन उनके शरीर-त्यागका समाचार मिल गया! शरीरके सम्बन्धको लेकर लौकिक दृष्टिसे विचार करनेपर यह बड़ी ही दुःखद घटना प्रतीत होती है। मेरे प्रति उनका जो प्रेमभाव था, उसकी इस समय तीन दिनोंसे बहुत ही स्मृति हो रही है। उनके-जैसे सरल हृदय निष्कपट पुरुष इस युगमें बहुत ही थोड़े हैं। उनमें कई आदर्श गुण ऐसे थे जिनकी स्मृति और अनुशीलनसे जीवनमें पवित्रताका सञ्चय हो सकता है। सत्सङ्गी भाइयोंमें उनके-जैसे दम्भ और मत्सरसे रहित श्रद्धालु पुरुष बिरले ही हैं। उनके-जैसे पुरुषका हमलोगोंके बीचसे उठ जाना अवश्य ही मर्मभेदी है और ऐसी अवस्थामें चित्तका शोकाकुल होना स्वाभाविक ही है, परंतु भैया! शरीरका यह परिणाम अवश्यम्भावी है। दो दिन आगे-पीछे सबकी यही गति होनेवाली है। हमलोगोंको शोक होता है ममत्व और स्वार्थवश। जिसमें ममत्व नहीं होता या किसी स्वार्थसाधनकी तनिक भी आशा नहीं होती, उसके वियोगमें दुःख नहीं होता। शत्रुभाव होनेपर तो मनुष्यको उसकी मृत्युमें द्वेषवश सुख होता है। पुत्रशोकसे व्याकुल राजा चित्रकेतुको समझानेके लिये नारदजीने जब राजपुत्रके आत्मासे अनुरोध किया तब उस आत्माने राजासे कहा कि 'तुम मेरे लिये क्यों शोक कर रहे हो? मैं अपने कर्मवश देव-मनुष्य, पशु-पक्षी आदि विविध योनियोंमें भटका करता हूँ। वहाँ किस योनिमें तुम लोग मेरे माता-पिता होते हो। मेरे मर जानेपर तुम्हें मुझे पुत्र समझकर शोक हुआ है, उसके बदले मुझे तुम शत्रु समझकर हर्ष क्यों नहीं मानते? क्योंकि ये शत्रु-मित्र और पिता-पुत्रके सम्बन्ध तो बदलते ही रहते हैं। शरीरके सम्बन्धसे ही ममत्वके कारण दुःख-सुख होता है। आत्मा सङ्गरहित, पुत्र-पिता और शत्रु-मित्रादि भावसे रहित और नित्य है, वह सुख-दुःखादि कुछ भी नहीं भोगता। तुमलोग मुझे अपना पुत्र क्यों समझते हो, मेरा तुम्हारे साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।'

भाई! यहाँके सभी सम्बन्ध आरोपित हैं। अपना-अपना कर्मफल भोगनेके लिये जीव विविध योनियोंमें आते हैं, और कर्मफल भोगकर चले जाते हैं। इसमें शोककी वास्तवमें कोई बात नहीं है। फिर········की मौत जैसी परिस्थितिमें हुई है, वह तो ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाली है। मृत्युका ऐसा सुअवसर किसको कब मिलता है। पुण्यभूमि ऋषिकेशमें ब्रह्मद्रवरूपा भगवती भागीरथीके पावन तटपर भक्तोंसे घिरे हुए, भगवन्नाम-कीर्तन और श्रीगीताजीकी पतितपावनी ध्वनिको कर्णपथसे हृदयमें धारण करते हुए और सच्चे महात्मा पुरुषोंके आश्रयमें शरीर-त्यागका सौभाग्य सहज ही किसको मिलता है? यह तो भाई श्री····के पुण्यपुञ्जका प्रभाव और उनकी जीवनमयी सत्सङ्गति और भगवच्छरणागतिका दुर्लभ फल है। ऐसी मृत्यु चाहनेपर नहीं मिलती। जब अभिमन्युके निधन होनेपर पाण्डव-परिवार शोकसागरमें डूबने लगा, श्रीसुभद्राजीकी दशा शोचनीय हो गयी तब श्रीभगवान्‌ने उनसे कहा था—

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा।
मा शुचस्तनयं भद्रे! गतः स परमां गतिम्॥

**तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयापि च।**
**सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः॥**
( महा० द्रोण० ७७ । १६-१७ )

**ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने।**
**सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः॥**
( महा० द्रोण० ७८ । ४१ )

'हे भद्रे ! तुम वीरमाता हो, वीरपत्नी हो, वीरपुत्री हो और वीरकी बहिन हो । तुम्हारा पुत्र परमगतिको प्राप्त हुआ है, उसके लिये शोक न करो । तुम्हारे पुत्रको वही दुर्लभ गति मिली है जिसको संतगण तप, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय और प्रज्ञासे प्राप्त करना चाहते हैं । मैं तो यह चाहता हूँ कि हमारे कुलमें और भी जो लोग हैं, सब इसी यशस्वी अभिमन्युकी गतिको प्राप्त करें ।'

अतएव·······का आदर्श मरण देखकर, भैया ! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये । माताजीको मेरा सादर यथायोग्य कहकर मेरी ओरसे उन्हें समझाना चाहिये । उन्हें अपने मनमें इस बातका गौरव करना और अपना सौभाग्य समझना चाहिये कि वे इस प्रकारकी दुर्लभ मृत्यु पानेवाले पुण्यशील पतिकी धर्मपत्नी हैं । पतिके सुखमें सुखी होनेवाली पत्नीको पतिकी शुभगति होते जानकर प्रसन्न ही होना चाहिये । जिस बातमें पतिकी आत्माको सुख हो, उसका कल्याण हो, वह बात देखनेमें परम दुःखप्रद होनेपर भी प्रेमके कारण पत्नीके मनमें सुख उपजानेवाली होनी ही चाहिये । पतिव्रता अपना सुख नहीं चाहती, वह पतिको सुखी देखकर ही सुखी होती है, चाहे पतिका वह सुख लौकिक दृष्टिसे अपने लिये कितना ही दुःखजनक माना जाता हो ।

भैया ! वियोग और संयोगमें जो दुःख और सुख होता है, वह अपने ही लिये होता है । हम वियोगमें अपनेको किसी लाभसे वञ्चित और संयोगमें लाभसे समन्वित समझते हैं, इसीसे हमें दुःख-सुखकी प्रतीति होती है । हमें उस जीवके सुख-दुःखका उतना खयाल नहीं होता । पर प्रेममें इस खयालकी बड़ी आवश्यकता है । फिर एक बात यह भी खयालमें रखनेकी है कि अनित्य वस्तुका नित्य संयोग असम्भव है । यह तो भगवान्‌की लीला है । हम सब उसके इस जगन्नाटकमें लीलापात्र हैं । घर स्टेज है, इसमें अभिनेताओंको अपना-अपना पार्ट करना है । यहाँ अपना कौन है । नये-नये सीन आयेंगे ही, यह समझकर शोकको नष्ट करना चाहिये । जब आत्मा अविनाशी है और शरीर क्षणभङ्गुर है ही तब शोक कैसा ? तुम गीता पढ़ते हो । तुम्हारी सत्सङ्गमें प्रीति है । अभी घरके मोहमें आसक्त भी नहीं हो । इससे सम्भव है तुमको शोक कम होगा । परंतु माताजीका शोक सहज नहीं है । मेरा तुमसे यह अनुरोध है कि तुम अब यथासाध्य सभी प्रकारसे माताजीको सन्तुष्ट रखनेकी चेष्टा करना । तुम्हारा प्रत्येक बर्ताव उनके दुःखानलमें शीतल जलकी धारा बहानेवाला होना चाहिये । भूलकर भी ऐसा कोई व्यवहार न कर बैठना, जो शोककी आगमें आहुतिका काम दे । तुम्हारा परम कल्याण मेरी समझसे अब माताजीके चित्तको सन्तोष पहुँचानेमें ही है । इसीको भगवत्सेवा समझकर करना चाहिये ।

भैया ! संसार अस्थिर है, यहाँ सभी कुछ जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिशील है । इस अस्थिर, अनित्य और दुःखालयमें स्थिरता, नित्यता और सुख कहाँ है ? इसमें जो आनन्द है वह तो नित्य, सनातन, अचल, अनन्त श्रीभगवान्‌के आनन्दरूपको लेकर ही है । उसे पानेपर फिर दुःखका स्वप्नमें भी लेश नहीं रहता और उसकी प्राप्ति न होनेतक लौकिक दृष्टिसे ऊँची-से-ऊँची अवस्थामें भी चित्तमें दुःखका दावानल धधकता रहता है । इसीसे श्रीभगवान्‌ने घोषणा की है—

**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥**

माताजीको धीरज बँधाना, समझाना और सेवाद्वारा उनके दुःखको हल्का करना तुम्हारा कर्तव्य है। तुम भी मनमें साहस, धैर्य रखना। विवेक और भगवच्छरणागतिके भावोंसे चित्तको क्षोभरहित बनाये रखनेका प्रयत्न करना।

मैं तुम्हें लिखनेको तो बहुत लिख गया। परंतु········की स्मृतिसे मेरा चित्त भी विगलित हुआ जा रहा है। काशीमें मेरे तो वे एक बड़े भारी आधार थे; परंतु इस स्मृतिसे क्या होता है।

( ५ )

## भविष्यके लिये शुभ विचार कीजिये

प्रिय महोदय, सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी पारिवारिक स्थितिसे आपको असन्तोष है, पिताजीके व्यवहारसे आपको क्षोभ होता है और आप आवेशमें आकर गृह-त्यागका और कभी-कभी देह-त्यागका विचार करते हैं। सो मेरी समझसे आपको ऐसा विचार भूलकर भी नहीं करना चाहिये। संसारमें ऐसा कोई भी नहीं है जिसके मनकी ही सब बातें होती हों। भगवान्का मङ्गल विधान मानकर प्रतिकूलतामें अनुकूलताका अनुभव करनेसे ही चित्तमें शान्ति हो सकती है। जहाँ आप भगवान्के मङ्गल विधानमें विश्वास करने लगेंगे, वहीं लौकिक परिस्थिति भी बदलने लगेगी। प्रतिकूल भी अनुकूल होने लगेंगे। पर वे न भी होंगे, तो भी आपका क्षोभ तो मिट ही जायगा। भावी जीवनको सङ्कटमय न देखकर सुखमय देखनेका सङ्कल्प कीजिये। जो मनुष्य रात-दिन दुःख, क्लेश, सङ्कट और असफलताका चिन्तन करता है, वह क्रमशः दुखी, क्लेशित, सङ्कटापन्न और असफल ही होता है। मनुष्यकी अपनी जैसी दृढ़ भावना होगी, वैसी ही परिस्थितिका निर्माण होगा और अन्तमें वह वैसा ही बन जायगा। आपके भगवान् सर्वसमर्थ हैं, आपके परम सुहृद् हैं, उनकी कृपापर विश्वास करके भविष्यको अत्यन्त उज्ज्वल तथा सुखमय देखनेका अभ्यास कीजिये। ध्रुव, प्रह्लाद, भरत आदिके इतिहासको याद कीजिये। भगवान्की कृपासे क्या नहीं हो सकता और उनकी कृपा आपपर अपार है। इस बातपर विश्वास कीजिये। भगवान्ने अपनेको स्वयं समस्त प्राणियोंका सुहृद् बतलाया है। आप घबराइये नहीं। मनमें जो देहत्याग आदिके असत् विचार आते हैं इनको निकालकर मनमें बार-बार ऐसे विचार लाइये कि आप सर्वशक्तिमान् सर्वलोकमहेश्वर अकारण प्रेमी भगवान्के परम प्यारे हैं। उनकी कृपा-सुधाधारा निरन्तर आपपर बरस रही है। आप उनके लाड़ले पुत्र हैं। उनकी कृपासे आपकी सारी विपदाएँ, सारी अड़चनें स्वतः ही दूर हो जायँगी। उनकी घोषणा है—'तुम मुझमें चित्त लगा दो, मेरी कृपासे सारी कठिनाइयोंसे तर जाओगे।' आपकी प्रत्येक स्थितिसे वे परिचित हैं और सदा आपके कल्याण-साधनमें लगे हैं। उनकी कृपाशक्तिके सामने, आपपर विपत्ति डालनेवाली कोई भी शक्ति कुछ भी नहीं कर सकेगी। आपकी वे सब प्रकारसे वैसे ही रक्षा करेंगे, जैसे स्नेहमयी माता बच्चेकी रक्षा करती है। आप किसी प्रकार भी निराश, उदास और विषादग्रस्त मत होइये। भविष्यको सङ्कटापन्न और अन्धकारमय देखनेका अर्थ है, भगवान्की कृपापर विश्वास न करना। आप जप-कीर्तन तथा भजन करते हैं सो बड़ी अच्छी बात है पर जप-कीर्तन और भजनका प्राण तो भगवान्पर विश्वास है। विश्वासहीन भजन निष्प्राण होता है। घरवाले यदि आपके भजन-कीर्तनसे नाराज हैं तो मन-ही-मन भजन कीजिये। मन-ही-मन करनेको कोई भी नहीं रोक सकता। शेष भगवत्कृपा।

( ६ )

## भगवद्भक्तिसे हानि नहीं होती

प्रिय बहिन ! आपका पत्र मिला । आप लड़कपनसे ही यथाशक्ति पूजन-पाठ तथा जप करती हैं । आपके दो पुत्र चले गये । अब तीसरा बच्चा हुआ है । पर आपकी माताजी कहती हैं कि 'इस पूजा-पाठके कारण ही पहले बच्चे मर गये थे । तुम्हारे पूजा-पाठसे इस बच्चेका भी अनिष्ट हो जायगा ।' सो यह उनका भ्रम है । भलेका फल कभी बुरा नहीं हो सकता । भगवान्‌की भक्ति, भगवान्‌के नाम-जप तथा अपने घरमें भगवान्‌की पूजा करनेका सभीको अधिकार है । स्त्री हो या पुरुष— यह सभीके लिये मङ्गलकारी कार्य है । भगवान्‌की भक्तिसे पुत्रोंके मरनेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण सब प्रारब्धके फल हैं । भगवद्भक्तिसे तो सकामभाव होनेपर ये प्रारब्धके विधान उलटे टल सकते हैं । न टलें तो भी अमङ्गल तो होता ही नहीं । मनुष्य-जीवनकी सफलता ही भगवान्‌की भक्तिमें है । आपको बड़ी नम्रता, विनय तथा सेवा करके माताजीको यह बात समझानी चाहिये । विवाद-झगड़ा कभी नहीं करना चाहिये ।

फिर भी यदि माताजीको इससे बहुत ही दुःख होता हो तो आप धीरे-धीरे अपने भक्तिके भावको मनके अंदर ले जाइये । मनसे आप भगवान्‌को याद करेंगी, उनकी मानसिक पूजा करेंगी तो उससे कोई आपको रोक नहीं सकता । न किसीको पता ही लग सकता है । फिर किसीकी नाराजीका कोई प्रश्न ही नहीं रह जायगा । और असलमें जितना महत्त्व मानसिक भावोंका है, उतना बाहरी पूजाका है भी नहीं । पर इसका यह अर्थ नहीं मानना चाहिये कि मैं बाहरी पूजाका निषेध करता हूँ । बाहरी पूजा भी अवश्य करनी चाहिये परंतु भीतरीके साथ-साथ । और जहाँ-कहीं उससे कोई उपद्रव खड़ा होता हो, ( चाहे वह किसीकी भूलसे हो ) वहाँ तो ज्यादा अभ्यास भीतरीका ही करना चाहिये ।

अन्तमें आपकी माताजीसे भी मेरी प्रार्थना है कि वे इस वहमको छोड़ दें । भगवान्‌की भक्ति और पूजा स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं और भगवान्‌की भक्ति-पूजासे लोक-परलोकमें कल्याण ही होता है । उसको रोकना, भक्ति करनेवालेका विरोध करना पाप है और उससे परिणाममें दुःख होता है । घरवालोंका तो यह परम धर्म होना चाहिये कि वे समझाकर, विनय करके, सेवा करके सभी घरवालोंको भगवान्‌की भक्तिके मार्गमें लगावें । वही सच्चा घरका मित्र, बन्धु और हितैषी है जो अपने घरवालों, मित्रों और बन्धुओंको भगवान्‌की ओर लगाता है—

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान तें प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद एतो मतो हमारो ॥

शेष भगवत्कृपा ।

---

श्रीमान् लाल साहेब श्रीशरणसिंहजीने गीताकी टीकाके सम्बन्धमें श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको पत्र लिखा था, उसका उत्तर श्रीजयदयालजीने निम्नलिखित रूपसे दिया था, जो उनके इच्छानुसार प्रकाशित किया जाता है । 'आपने कहा तुम अपनी टीकापर ऐसा चिह्न बना दो जिसमें तुम्हारे समाजकी टीका मालूम हो सो यह चिह्न तो उसपर अपने-आप ही बना है । टीकाकारके स्थानपर मेरा नाम है ही और भूमिकामें सब कुछ लिख दिया है ही ।' इसपर भी कोई न समझें तो उनको समझानेका काम आपका है ।

# श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इस समय समस्त विश्वमें हाहाकार मचा है। सब ओर अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, कलह, कलुष, संग्राम और संहार बढ़ रहे हैं। धर्म तथा ईश्वरके प्रति बढ़नेवाली अश्रद्धासे मनुष्य पिशाच हुआ चला जा रहा है। इसीसे आधिदैविक दुःख भी बढ़ रहे हैं। भूकम्प, बाढ़, अवर्षा, अकाल, अन्नकष्ट, व्याधि आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। पता नहीं, ये उपद्रव कितने और बढ़ेंगे। ऐसी दशामें इस विपत्तिसे त्राण पानेके लिये श्रीभगवान्‌का आश्रय ही एकमात्र उपाय है। भगवदाश्रयके लिये भगवन्नामका आश्रय आवश्यक है। भगवन्नामसे ऐसा कौन-सा विघ्न है जो नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है जो नहीं मिल सकती। प्रतिवन्धक प्रबल होनेपर देर भले ही हो जाय, परंतु नामका अमोघ फल तो होगा ही। इस घोर कलियुगमें तो जीवोंके लिये भगवन्नाम ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष तथा समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्‌की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका जप-कीर्तन करना चाहिये। 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक तथा सभी पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं। प्रतिवर्षकी भाँति गतवर्ष २० करोड़ मन्त्र-जपके लिये प्रार्थना की गयी थी। प्रसन्नताकी बात है कि चार सौसे अधिक स्थानोंसे सहस्रों नर-नारियोंने करोड़ों मन्त्रोंका जप किया है। स्थानोंकी सूची और मन्त्र-संख्या आगामी अङ्कमें प्रकाशित की जायगी। हम इन सभी जापकोंके प्रति हृदयसे कृतज्ञ हैं।

इस वर्ष भी अपने देशके, धर्मके तथा विश्वके कल्याणके लिये विशेषरूपसे प्रयत्न करके 'कल्याण' के भगवत्-विश्वासी पाठक-पाठिकाओंको नाम-जप करना-कराना चाहिये। गतवर्षकी भाँति इस वर्ष भी २० करोड़ मन्त्र-जपके लिये प्रार्थना की जाती है। आगामी कार्तिक शुक्ला १५ से जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल १५ तक हो। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्‌का नाम इतना प्रभावशाली होनेपर भी इसका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवत्-विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे करवायें। नियमादि सदाकी भाँति हैं।

यह आवश्यक नहीं कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेसे लेकर रातको सोनेतक चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है। संख्याकी गिनतीके लिये माला हाथमें या जेबमें रक्खी जा सकती है अथवा प्रत्येक मन्त्रके साथ संख्या याद रखकर भी गिनती की जा सकती है। बीमारी या अन्य किसी कारणवश जपका क्रम टूट जाय तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। यदि ऐसा न

हो सके तो नीचे लिखे पतेपर उसकी सूचना भेज देनेसे उसके बदलेमें जपका प्रबन्ध करवाया जा सकता है । किसी अनिवार्य कारणवश यदि जप बीचमें छूट जाय, दूसरा प्रबन्ध न हो और यहाँ सूचना भी न भेजी जा सके, तब भी कोई आपत्ति नहीं । भगवन्नामका जप जितना भी किया जाय, उतना ही उत्तम है । भगवन्नामकी शरणागति अमोघ है और वह महान् भयसे तारनेवाली होती है ।

जो लोग जपका नियम करें-करावें, वे नीचे लिखे अनुसार जोड़कर सूचना भेजनेकी कृपा करें ।

मेरा तो विश्वास है कि यदि 'कल्याण'के प्रेमी पाठक-पाठिकागण अपने-अपने यहाँ इस बातकी पूरी-पूरी चेष्टा करें तो शीघ्र ही हमारी प्रार्थनासे भी बहुत अधिक संख्याकी सूचना आ सकती है । अतएव सबको इस महान् पुण्य कार्यमें मन लगाकर भाग लेना चाहिये ।

१. जप किसी भी तिथिसे आरम्भ करें, इस नियमकी पूर्ति चैत्र शुक्ला १५ को समझनी चाहिये । उसके आगे भी जप किया जाय तो बहुत उत्तम है ।

२. सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं ।

३. प्रतिदिन कम-से-कम एक मनुष्यको १०८ (एक सौ आठ) मन्त्र (एक माला) का जप अवश्य करना चाहिये ।

४. सूचना भेजनेवाले सज्जन केवल संख्याकी ही सूचना भेजें । जप करनेवालोंके नाम भेजनेकी आवश्यकता नहीं । सूचना भेजनेवाले सज्जन केवल अपना नाम और पता लिख भेजें ।

५. संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं । उदाहरणार्थ—यदि ऊपर दिये हुए सोलह नामोंके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रतिदिन मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है । जिसमें भूल-चूकके लिये आठ मन्त्र बाद कर देनेपर १०० (एक सौ) मन्त्र रह जाते हैं । जिस दिनसे जो भाई जप करें उस दिनसे चैत्र शुक्ला पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब भी इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये ।

६. संस्कृत, हिंदी, मारवाड़ी, मराठी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी और उर्दूमें सूचना भेजी जा सकती है ।

७. सूचना भेजनेका पता—नाम-जप-विभाग 'कल्याण' कार्यालय, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

प्रार्थी—हनुमानप्रसाद पोद्दार

कल्याण-सम्पादक

रसना साँपिनि, बदन बिल जे न जपहिं हरिनाम ।
तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि बिधाता बाम ॥
राम नाम रति, राम गति, राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, चहुँ दिसि तुलसीदास ॥

# कल्याणके पाठकोंसे विनीत प्रार्थना

इधर कुछ समयसे हमलोग पुराने हस्तलिखित शास्त्रीय ग्रन्थोंके संग्रहका प्रयत्न कर रहे हैं, वह इसलिये कि इन ग्रन्थोंकी रक्षा हो। बहुत-से स्थानोंमें आजकल पुराने ग्रन्थ असावधानी तथा रक्षाकी सुव्यवस्था न होनेके कारण नष्ट हो रहे हैं। अतएव हमारी 'कल्याण'के प्रत्येक पाठकसे प्रार्थना है कि वे वेद-वेदाङ्ग, स्मृति, पुराण, तन्त्र और धर्मशास्त्र आदि विषयोंके संस्कृत, हिंदी, बंगला ग्रन्थ पुराने कागजों-पर या ताड़पत्रोंपर लिखे हुए संग्रह करके हमें भेजने-भिजवानेकी कृपा करें। व्रजभाषाका अमुद्रित साहित्य किन्हींके पास हो तो वे भी भेजनेकी कृपा करें। खर्च हम देंगे और यदि कोई सज्जन उचित मूल्य चाहेंगे तो उसपर भी विचार किया जायगा।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

सम्पादक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

रजि० सं० ए० १७५

श्रीहरिः

विश्वानन्दकदम्बसंपदमतिस्निग्धं तमालद्युतिं
दृष्ट्वा निर्भरविभ्रमं घन इति त्वां संगता विद्युतः।
त्वद्रूपामृतसिन्धुसंगमवशात् प्राप्याम्बरप्रच्यवं
चाञ्चल्यात् किमु नन्दनन्दन भवत्पीताम्बरत्वं दधुः॥

( श्रीमधुसूदन सरस्वती )

नन्दनन्दन ! सम्पूर्ण आनन्दराशिको अपने कलेवरमें एकत्र किये हुए, अत्यन्त स्निग्ध, तमालके समान श्यामवर्ण एवं पूर्ण विलास (हाव-भाव) से युक्त तुम्हारे श्रीविग्रहको बादल समझकर विद्युन्माला उससे लिपट गयी। किंतु चञ्चलतावश तुम्हारी रूप-माधुरीके अमृतसिन्धुमें गोता लगानेके कारण वह आकाशरूप अपने आश्रयसे च्युत हो गयी। इसीलिये क्या वह पीताम्बर बनकर सदाके लिये तुम्हारी शरण पा गयी ? ( सच है, आश्रयहीन होकर तुमसे मिलनेपर ही तुम्हारा सर्वोत्तम आश्रय प्राप्त होता है और तुम्हारा दुर्लभ आश्रय पा लेनेपर दूसरे किसी आश्रयकी अपेक्षा नहीं रहती। क्योंकि सारे आश्रयोंके परम आश्रय तुम्हीं तो हो। आकाश भी तुम्हारे ही आश्रित हैं।)